जुलाई-दिसम्बर २०१६
वर्ष-४ अंक-२
ISSN 2347-8373

सार्क अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

अर्द्धवार्षिक पत्रिका

Peer Reviewed

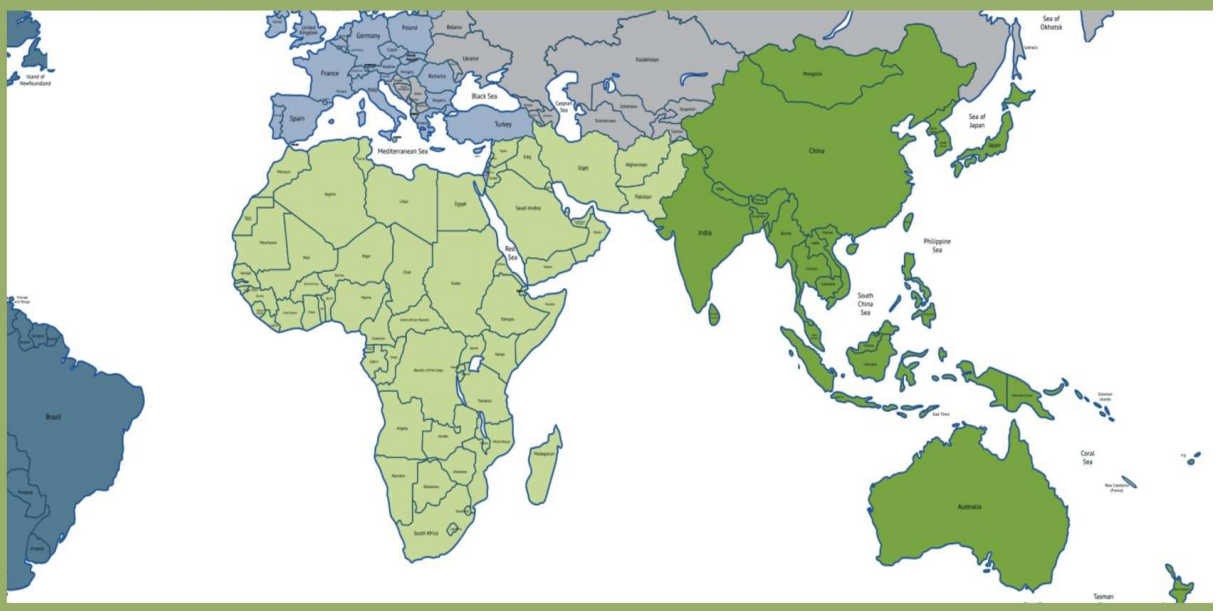

एम.पी.ए.एस.वी.ओ. द्वारा सार्क
सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित

जुलाई-दिसम्बर २०१६
वर्ष-४ अंक-२

सार्क

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

अर्द्ध-वार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. सपना भारती, डॉ. भावना गुप्ता, डॉ. राजेश, डॉ. रेनू कुमारी, डॉ. निशी रानी, डॉ. संगीता जैन, डॉ. आरती बंसल, डॉ. कला जोशी, डॉ. सुनीता त्रिपाठी, डॉ. रानी सिंह, डॉ. स्वीटी बंदोपाध्याय, डॉ. अर्चना शर्मा, डॉ. पिन्टू कुमार, मधुलिका सिन्हा, डॉ. मधुलिका, डॉ. नीलू कुमारी, डॉ. मनीषा आमटे, डॉ. सुषमा पराशर, डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय, डॉ. मनोज कुमार राय, आशा मीणा, तन्मय चटर्जी, अनीता वर्मा, अनन्द रघुवंशी, नंद किशोर, रेनू चौधरी, श्याम किशोर, विमलेश कुमार सिंह, अखिलेश रध्वज सिंह, दिनेश मीणा, गुंजन, विनीत सिंह, नीलमणि त्रिपाठी, अंजू बाला, ब्रजेश कुमार, डॉ. इन्दुमती सिंह, रमेश चन्द, डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

रेव डोडामगोडा सुमनासार (श्रीलंका), वेन केन्डागेले सुमनारांसी थेरो (श्रीलंका), रेव टी धम्मारतना (श्रीलंका), पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), फ्रा बूनसर्मस्त्रिथा (थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), मोहम्मद सौरजाई (जाबोल, ईरान), माजिद करीमजादेह (ईराक), डॉ. अहमद रेजा केईखाय फरजानेह (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

पाठकों से

सार्क,अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका प्रत्येक छ: माह (जनवरी-जून एवं जुलाई-दिसम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में सार्क, अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका 2 भाग हिन्दी एवं 2 भाग अंग्रेजी में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 4800+500/-डाक शुल्क, एक प्रति 1200+100/- डाक शुल्क,
वैदेशिक : 6000+2000/- डाक शुल्क, एक प्रति 1200+1000/- डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। सार्क एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है, अत: किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,
टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com
मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 01 सितम्बर 2016

मनीषा प्रकाशन
(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/ 2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

सार्क

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका
वर्ष-4 अंक-2 जुलाई-दिसम्बर 2016

शोध प्रपत्र

श्रीकृष्ण की भगवत्ता -अर्पिता मिश्रा 1-4
पुराणों में शिव का स्वरुप -डॉ. बृजेश कुमार द्विवेदी 5-9

ऋग्वेदीय उषस् सूक्तों का प्राकृतिक-सौन्दर्य -डॉ. सुमन दूबे 10-13
वैदिक देवताओं के आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक स्वरुप -डॉ. शारदा कुमारी 14-18

"काव्य प्रकाश की रचना, कारिका और वृत्ति ग्रंथ के कर्ताओं पर अनुशीलन एवं उनका
भेद-अभेद साथ ही मंगलाचरण की विषद व्याख्या" -डॉ. मनीषा शुक्ला 19-25

जगत् की संरचना : विवेकानन्द -डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री 26-28
ऋग्वैदिक उषस् का अन्य देवताओं के साथ सम्बन्ध -डॉ. सुमन दूबे 29-33

गुप्तकालीन भारतीय इतिहास में गुहा स्थापत्य -राम कुमार 34-40
शास्त्रीय संगीत की प्रमुख शैलियों और बंदिशे -डॉ. रूपाली जैन 41-44

स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा प्रस्तावित मानव धर्म -डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री 45-47
भक्तिकाल में नारी विषयक दृष्टिकोण -श्रीमती पूनम आर्या 48-52

मध्यकाल सम-सामयिक अन्य भारतीय भाषाओं के कवि एवं उनकी रचनाओं पर
हिन्दी कवियों की रचनाओं का प्रभाव -डॉ. अंशुमाला मिश्रा 53-63

प्लेटो का विज्ञानवाद -डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री 64-67
भारत-चीन सम्बन्ध-सतर्कता की आवश्यकता -डॉ. सीमा रानी 68-71

आधुनिक भारत में महान निर्माता सरदार बल्लभ भाई पटेल -डॉ. अन्जू लता श्रीवास्तव 72-77
भारतीय समाज में कन्याभ्रूण हत्या की समस्या : एक प्रमुख चुनौती के रूप में -नीरज यादव 78-82

प्रिंट ISSN 2347-8373, वेबसाइट ISSN 2347-8373

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,1-4
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 16 अप्रैल 2016

श्रीकृष्ण की भगवत्ता

अर्पिता मिश्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *श्रीकृष्ण की भगवत्ता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अर्पिता मिश्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

श्रीकृष्ण ने अपनी भगवत्ता की स्पष्ट उद्घोषणा की है। यह उद्घोषणा सामूहिक न होकर अत्यन्त वैयक्तिक है, जिसे केवल विषादित अर्जुन के समक्ष कहा गया। इस उद्घोषणा का श्रोता सिर्फ अर्जुन है -एक उद्घोषक है और एक श्रोता।

कुरूक्षेत्र के मैदान पर आज युद्ध प्रेमियों के शौर्य की परीक्षा है। योद्धाओं को अपनी शूरता-वीरता की परीक्षा देनी है। युद्ध क्षेत्र में अपने गुरूओं, बुजुर्गों, बन्धु-बान्धओं को देखकर परीक्षार्थी अर्जुन घबड़ा गया है[१], भ्रमित हो गया है, जिसे समझने के लिये श्रीकृष्ण को एक आध्यात्मिक व्याख्यान देना पडा जिसका श्रोता सिर्फ अर्जुन है। *''वेद श्रुतिवि-प्रतिपन्न'' अर्जुन* कृष्ण की बात समझ नहीं रहा है, इसीलिये अपनी बात के समर्थन में श्रीकृष्ण को अपनी भगवत्ता की घोषणा करनी पड़ी और अर्जुन को विराट् स्वरूप दिखाना पड़ा।

यह विलक्षण और एकाकी उद्घोषणा है, जिसमें श्रोता को युद्ध करने के लिये प्रेरित किया गया। अर्जुन को युद्ध करने के लिये अपने बन्धु बान्धवों को मारने की प्रेरणा के लिये इस घोषणा की आवश्यकता पड़ी। अर्जुन मान नहीं रहा है, उसे समझाने के लिये श्रीकृष्ण को कहना पड़ा कि, ''मैं इस शरीर में सनातन, पुरातन, नित्य परमेश्वर और परम तत्व हूँ। मैं ही इस सृष्टि का मूल कारण हूँ।[२] सारी प्रकृति मुझसे उत्पन्न है और मेरे में ही विलीन होती है। सब प्राणियों की जीवंतता और ऊर्जा मैं ही हूँ। मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। सम्पूर्ण जगत् मणियों की तरह मुझमें गुम्फित है।'

मत्तः परतरं नाऽन्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।।[३]

* [एम. ए., नेट] संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : arpitabhu101@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

समय-समय पर अन्य महापुरूषों ने भी अपनी टिप्पणियाँ अपने सम्बन्ध में की हैं। किसी ने अपने को खुदा का पैगम्बर कहा, किसी ने परमेश्वर का पुत्र, किसी ने प्रभु की प्रेमिका कहा तो किसी ने प्रेमी। जहाँ किसी ने भगवत् स्वरूप कहा तो किसी ने भगवत्ता को प्राप्त, वहाँ श्रीकृष्ण स्वयं भगवान हैं, परमेश्वर हैं।

वस्तुतः यह सत्य है कि परमात्मा मनुष्य शरीर के माध्यम से ही प्रकट होता हैं। मनुष्य में परमेश्वर का अंश है।[४] मनुष्य माध्यम है, अंश है। माध्यम कभी परमेश्वर नहीं हो सकता। दीपक की ज्योति सूर्य की ज्योति है, लेकिन सूर्य नहीं है। श्रीकृष्ण ने स्वयं को ईश्वर का अंश न कहकर स्वयं को ईश्वर होने की उद्घोषणा की।[५] श्रीकृष्ण ने उपालम्भ स्परूप यह भी कहा कि, ''लोग मुझे शरीरधारी समझते हैं, लेकिन मैं सनातन परमेश्वर ब्रह्म हूँ।''[६]

श्रीकृष्ण की यह उद्घोषणा आज का बुद्धिजीवी नहीं समझ पा रहा है। उसके अनुसार मस्तिष्क में स्थिति ''टेम्पोरल लोव'' के अनियंत्रण के कारण व्यक्ति आध्यात्मिक, ईश्वरीय शक्ति का अनुभव करता है, जो उपचार करने के बाद सामान्य हो जाता है। प्रयोग के द्वारा ''व्यक्ति के मैग्नेटिक फील्ड से दिमाग के भीतर स्थित टेम्पोरल लोव पर प्रहार कर देखा गया तो पता चला कि व्यक्ति आध्यात्मिक व ईश्वरीय शक्ति का अनुभव करने लगा।''

आज का संशयात्मा बुद्धिजीवी इस विचार का है कि भगवत्ता की प्राप्ति या बुद्धत्व की प्राप्ति की घोषणा आवश्यक नहीं है। भगवत्ता या बुद्धत्व स्वयं परिलक्षित होता है -शरीर के प्रत्येक हाव-भाव, क्रिया-कलाप, मौन से, दृष्टिपात से, शुचि-स्मिता से, भाव भंगिमा से, अकथ्य से - उसकी घोषणा आवश्यक नहीं है।

परम शान्त बुद्ध हत्यारे अंगुलिमाल के पास गये। अंगुलिमाल अपनी तांत्रिक साधना के अंतिम सोपान पर था, उसे सिर्फ एक शीश की आवश्यकता थी। बुद्ध के रूप में एक शीश सामने था, साधना का अंतिम सोपान सामने था, आवश्यकता थी सिर्फ शस्त्र चलाने की। शान्त, निर्लेप, निर्भय बुद्ध को देखकर अंगुलिमाल की दुष्टता तिरोहित हो गयी, वह बुद्ध के चरणों पर गिर पड़ा, परिव्राजक हो गया, शिष्य हो गया। बुद्ध को उसे समझाना नहीं पड़ा, विराट् स्वरूप नहीं दिखाना पड़ा, उससे कहना नहीं पड़ा कि मुझे बुद्धत्व प्राप्त हो चुका है, मैं बुद्ध हूँ मेरी बात मान। सिर्फ मौन निमंत्रण, प्रेम, करूणा, दया का दृष्टिपता, अहिंसा की मोहक मुस्कान -महान क्रान्ति घटित हो गयी। हिंसक अहिंसक बन गया, प्रेम का पुजारी हो गया- मानवता के प्रेम का पुजारी।

भोग-विलास त्यागी बुद्ध अकेले उत्कट सत्यान्वेषी हैं, जिन्होंने संसार के सत्य को पहचाना, उसके कारण को पहचाना और उसके निवारण का उपाय जनसमूह को बताकर जनकल्याण किया। योद्धा को युद्ध से विरत किया, हिंसक को अहिंसक बनाया, क्रूर को कारूणिक बनाया, रूदन करती मानवता को प्रेम, मैत्री, करूणा अहिंसा, सद्भावना का अमर संदेश किया।

बुद्ध ने आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध में ईमानदारी पूर्वक कुछ नहीं कहा -मौन रहे। स्वयं को भगवान नहीं कहा, अपनी पूजा की मनाही की -चाहते तो अपने को भगवान कह सकते थे। अनीश्वरवादी बुद्ध की भगवत्ता का अनुमोदन उनके विरोधी मनुवादियों ने किया -उन्हें भगवान कहा, बुद्धावतार कहा।

श्रीकृष्ण की भगवत्ता दुर्योधन की दुष्टता का दमन नहीं कर सकी, पुत्र मोह से मोहित धृतराष्ट्र को राजधर्म नहीं समझा सकी, कर्तव्यनिष्ठ कर्ण को कर्तव्यच्युत नहीं कर सकीं, शस्त्रों के साधक द्रोणाचार्य के शस्त्रों की धार कुण्ठित न कर सकी, शास्त्रों के ज्ञाता कृपाचार्य की ज्ञानाग्नि को प्रज्ज्वलित न कर सकी, गंङ्गा पुत्र भीष्म को न्याय का स्मरण न करा सकी, धर्मराज युधिष्ठिर को चौसर खेलने से मना न कर सकी, अपने वंशजों को अनुशासित न कर सकी, अपने पुत्रों को ज्ञानी और समझदार भी न बना सकी।

श्रीकृष्ण की भगवत्ता से, दर्शनशास्त्र से, सिर्फ एक व्यक्ति प्रभावित हुआ -अर्जुन। इतने विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यान से सिर्फ अर्जुन प्रेरित हुआ, एक व्यक्ति से युद्ध करने के लिये इतने तार्किक व्याख्यान की आवश्यकता पड़ी। यह विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान युद्ध को प्रेरित करने के लिये दिया गया न कि युद्ध रोकने के लिये। यदि युद्ध रोकने का ऐसा प्रयास होता तो ''सर्वभूतहितेरता'' की भावना महिमा मण्डित होती, गौरवान्वित होती।

कुरूक्षेत्र की युद्धभूमि में दिया गया तत्वज्ञान का व्याख्यान और निष्पत्ति स्वरूप भगवत्ता की घोषणा का निष्पादन बाद के काल में नहीं किया गया। युद्ध के बाद श्रीकृष्ण की भगवत्ता के सम्बन्ध में प्रयास नहीं दिखते। हाँ! युद्ध के बाद युद्ध हुये हैं और सामाजिक, राजनैतिक उतार-चढ़ाव भी हुये।

श्रीकृष्ण की भगवत्ता से निष्काम कर्मयोग की निष्पत्ति हुई। अनासक्त भाव से, फलेच्छा न करते हुये कर्म करने की बात कही। कर्म करते रहो, फल की इच्छा मत करो -*कर्मण्येवाधिरास्ते मा फलेषु कदाचन्..।*[७]

वस्तुतः सारे कर्मो में फल की इच्छा स्वतः निहित है। क्षेत्रकर्षण, वृक्षारोपण, व्यवसाय, साधना, भजन-पूजन आदि सभी कृत्यों में फल की इच्छा स्वतः निहित है। साधक की साधना में भी फल की इच्छा निहित है -मुक्ति, स्वर्ग की प्राप्ति, भगवान की प्राप्ति। निष्काम कर्म का तात्पर्य यह है कि कर्म करते रहिये यदि निहित फल प्राप्त नहीं हुआ तब भी कर्म करते रहिये निराश मत होइये। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध करने के लिये कहा, साथ में यह भी कहा कि उससे तुम्हें क्या फल मिलेगा? युद्ध में जीत गये तो राज्य का भोग करोगे, यदि मारे गये तो तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी -

हतो वा प्राप्स्यति स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।[८]

श्रीकृष्ण के तत्वज्ञान की कथनी और करनी में अन्तर स्पष्ट दृष्टिगत है। श्रीकृष्ण ने युद्ध के लिये बनाये गये नियमों को भंग कराया- शस्त्र विहीन कर्ण को मारने के लिये अर्जुन को प्रेरित किया, शोक मग्न द्रोणाचार्य को मारने को कहा, धर्मराज युधिष्ठिर को झूठ बोलने के लिये बाध्य किया। गदा-युद्ध में दुर्योधन की जांघ पर प्रहार करने का संकेत किया। इस गदायुद्ध की भर्त्सना बलराम ने की और कहा, ''कृष्ण तुम तो अनीति को सहन कर लेते हो, लेकिन मैं अन्याय को सहन नहीं कर सकता, मैं इस अनीति का दण्ड अवश्य दूँगा।'' दुर्योधन ने कहा, ''कृष्ण तुम्हें लोकनिन्दा का पात्र बनना होगा।'' गान्धारी के दुःखी होने पर भीम ने स्वीकार किया कि अन्याय हुआ और कहा, ''माँ मुझे इसका दुःख है, लेकिन धर्मयुद्ध करके दुर्योधन से जीत सकना असम्भव था।''

श्रीकृष्ण की भगवत्ता ३६ वर्षों के मध्य दो युद्धों को टालने में असमर्थ रही, प्रथम युद्ध तो हस्तिनापुर के राजपरिवार का था लेकिन छत्तीस वर्ष बाद दूसरा युद्ध उनके परिवार मे हुआ जिसे टाला नहीं जा सका, जिससे बलराम को आत्महत्या करनी पड़ी, कृष्ण को अवसादित होकर अकेले जंगल में वृक्ष के नीचे लेटना पड़ा और शिकारी के तीर से घायल होकर शरीर छोड़ना पड़ा।

श्रीकृष्ण की भगवत्ता का श्रेय नारद की भविष्यवाणी, जनवाणी और व्यासवाणी को है।[९] वेदव्यास वैदिक साहित्य के सम्पादक हैं और महाग्रंथ महाभारत के प्रणेता है। इस महाग्रंथ में महाभारत युद्ध की कथा तथा कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं और उनके आध्यात्मिक ज्ञान का सार ''गीता'' का वर्णन है। निःसंदेह! श्रीकृष्ण ने जो कुछ भी किया या कहा सब महर्षि वेदव्यास के माध्यम से कालान्तर में लिपिबद्ध हुआ -इसमें प्रक्षेपण स्वाभाविक है। कवि या लेखक अपने पात्र के माध्यम से अपने मनोविचारों का चित्रण करता है जो स्वाभाविक है। यह कवि पर आधृत है कि उसका पात्र क्या कहना चाहता है? पात्र कवि के वशीभूत है, कवि पर आश्रित है। सम्भव है श्रीकृष्ण ने स्व को परमेश्वर न कहा हो लेकिन जन-मानस ने उन्हें परमेश्वर बनाया जिसका समर्थन वेदव्यास ने किया।

महर्षि भी जनक्रांति नायक कृष्ण को भगवान मानने के लिये बाध्य हैं। क्यों? जनता के कारण -मथुरा की जनता के कारण, जिसने कंस की क्रूरता को देखा, देवकी के ७ पुत्रों की हत्या का समारोह देखा, देवकी की मातृ-ममता को मर्माहत होते देखा, अपने प्रिय राजा उग्रसेन को कंस द्वारा प्रताड़ित होते देखा, कंस की क्रूरता और अन्याय के अंगारों को अपने हृदय में दहकते देखा। कंस की क्रूरता से छुटकारा पाने के लिये अपने को असमर्थ समझ भगवान की तरफ देखा। मथुरा की जनता को कंस की क्रूरता से धरती का कोई व्यक्ति नहीं बचा सकता -सिर्फ भगवान। भगवान के अतिरिक्त कोई दूसरा कंस को समाप्त नहीं कर सकता। कंस को समाप्त करने वाले कृष्ण मथुरा की जनता के लिये भगवान हैं। कृष्ण जन-जन के प्यारे हैं, दुलारे हैं, आदरणीय हैं, परमादरणीय हैं -भगवान के स्तर तक। भगवान व्यास भी जन-मानस का सम्मान करने को बाध्य हैं।

जन-मानस ने अन्य महापुरूषों को भी पूज्य और भगवान बनाया है। अनीश्वरवादी बुद्ध और महाबीर स्वामी को भगवान बुद्ध और भगवान महावीर कहा। जुलाहे कबीर को सद्गुरू कहा। मूर्ति पूजा के विरोधी बुद्ध और कबीर की

मूर्तियाँ बनाकर उनकी पूजा की। अम्बेडर की मूर्ति भी की जा रही है। महर्षि वेदव्यास को भगवान वेदव्यास कहा गया। वस्तुतः भगवान की डिग्री से आदर सम्मान का भाव झलकता है। जन-चेतना अपने नायक का आदर सम्मान करने के लिये उसे भगवान नाम से अभिहित करती है।

भगवान की अवधारणा जन-मानस को नियंत्रित करने के लिये आवश्यक कथन है। जन-चेतना मानव कथन पर संदेह कर सकती है, परन्तु जब भगवान ने कही हो तो उसे जन-मानस अस्वीकार नहीं कर सकता। उसे बात माननी ही पड़ती है, भयवश धर्म-भीरूता समाज को नियंत्रित करती है -यह सत्य है; लेकिन समाज के मठाधीशों ने इसके द्वारा समाज का शोषण भी किया है। समाज संचालकों को प्रसन्न करने लिये लेखकों ने भगवान के मुखारबिन्द का आश्रय लिया। लेखक जन-मानस की अवहेलना नहीं कर सकता।

निश्चय पूर्वक श्रीकृष्ण अपने काल के जन-नायक रहे। समाज के निचले समूह में लोकप्रिय रहे। उन्होंने शासित, पीड़ित, गरीब तबके का नेतृत्व किया। उन्हें अन्धविश्वासों से सचेत किया। कर्मकाण्ड और इन्द्र आदि देवों की पूजा करने से मना किया। उन्हें शासित से शासक बनाया और एक सशक्त गणसंघ की स्थापना की। श्रीकृष्ण की रणनीति और कुशल नेतृत्व का सम्मान हस्तिनापुर राजपरिवार सहित सभी राजाओं ने किया। स्पष्ट है कि बहु-संख्यक जनता उनके साथ थी। उन्होंने कर्मकाण्ड, वेदवाद, देवपूजा, बहु-देववाद आदि व्यवस्था का विरोध किया। मनुवाद के पास उन्हें भगवान बनाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। उनकी भगवत्ता का विश्लेषण और भाष्य अपने-अपने तरीके से किया गया। उनकी समाजवादी, गणतंत्रवादी समाज सुधार की बातों का भाष्य मनुवादी व्यवस्था के अनुसार किया।

मनुवाद द्वारा श्रीकृष्ण को भगवान नाम की सर्वोच्च डिग्री देने के कारण कृष्ण के बहु-संख्यक अनुयायी अवश्य प्रसन्न और गद्‌गद् हुए होंगे और हो रहे हैं। श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिपादित समाजवादी, शोषण-विहीन, लोकतांत्रिक, गणतांत्रिक समाज व्यवस्था को हाशिये पर रखते हुये उनके द्वारा गीता का एक व्याख्यान कहलवा दिया गया। इस व्याख्यान के अनेक भाष्य हुये, अनेक अर्थ किये गये और अनेक प्रतीकार्थ, गूढ़ार्थ, रहस्यार्थ खोजे गये। सामान्य अशिक्षित जनता अपने नायक के गुणानुवाद से गद्‌गद् और प्रसन्नचित्त हुई -गुणानुवाद भी विरोधियों द्वारा -कौन प्रसन्न नहीं होगा?

भगवान के लिये सबकुछ सहज सम्भाव्य है। मानव के रूप में श्रीकृष्ण के कृत्य अत्यधिक समादरणीय हैं -भगवान के स्तर तक; मानव समाज के लिये असम्भव कार्य को सम्भव करने वाले कृष्ण मानव नहीं -मानवेतर भगवान कृष्ण हैं, समग्र हैं, विराट् है।

श्रीकृष्ण क्या हैं? नर या नारायण, यथार्थवादी या रहस्यवादी, मिथ्यावादी या सत्यवादी, शाहसित या शासक, व्यक्तिवादी या लोकवादी, रागी या विरागी, योगी या भोगी, जन-नायक या नृप-नायक, मनुवादी या जनवादी या समग्र वादी; इस पर मत-मतान्तर हो सकता है, लेकिन एक बात पर मत-मतान्तर नहीं है कि उनमें ''कुछ विशेष और शेष' है जिससे भारतीय जन-मानस अत्यधिक प्रभावित हुआ है।

यह 'कुछ विशेष और शेष' क्या है? इसकी खोज आज भी जारी है और अनवरत जारी रहेगी।

संदर्भ सूची

[१]श्रीमद्भगवद्गीता, १-२९.३०
[२]वही, १४-३
[३]वही, ७-७
[४]ममैवांशो जीवलोके, श्रीमद्भगवद्गीता १५-७
[५]अजोऽपि सन्नव्ययात्मा, श्रीमद्भगवद्गीता ४-६
[६]ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम, श्रीमद्भगवद्गीता १४-२७
[७]श्रीमद्भगवद्गीता, २-४७
[८]वही, २-३७
[९]एते चांशकलाः पुसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् -भागवत, १.३.२८

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,5-9
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 16 अप्रैल 2016

पुराणों में शिव का स्वरुप

डॉ. बृजेश कुमार द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *पुराणों में शिव का स्वरुप* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *बृजेश कुमार द्विवेदी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

पुराण प्राचीन परम्परा का द्योतक शब्द है जिसमे 'पुरा अनित' अर्थात् समय मे जो जीवित था,[1] की पृष्ठ भूमि मे पूरा एततृ अभूत' अर्थात् प्राचीन काल मे ऐसा हुआ था[2] की ध्वनि व्यंजित होती हैं। ऋग्वेद[3] और अर्थर्ववेद[4] मे प्रयुक्त प्राचीनता द्योतक 'पुराण' शब्द ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् तक आते-आते इतिहास और परम्परा को समाहित करता हुआ दिखाई देता है।

उपनिषदों मे जो भारतीय धार्मिक विश्वासों और आचार विचार का स्वरुप परिलक्षित होता है, उसका पूर्ण विकास हमें पुराणों में देखने को मिलता है। रामायण में पुराण का मात्र नामोलेख मिलता है[5], वहीं महाभारत में इनकी संख्या 18 का ही वर्णन किया गया है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि पुराणों की रचना चौथी से छठी शताब्दी तक हो गयी थी, पुराणों में शैव धर्म के दो रुप स्पष्ट परिलाक्षित होते हैं दार्शनिक और लोकप्रियता।

ऋग्वेद में जहॉ हमें शिव का उग्र रुप परिलक्षित होता है, वहीं उत्तरवैदिक काल तक आते-आते 'शिव','शम्भू' के रुप में दिखाई देते हैं तथा पुराणों में शिव को दार्शनिक रुप में 'परब्रह्म' मानकर प्रतिष्ठत किया गया है। उन्हीं को स्रष्टा, विश्व का आदि कारण एवं उन्हीं की महिमा का वेदों में वर्णन किया गया है।[6] शिव की सत्ता दार्शनिकों के लिए, ब्रह्म, आत्मा, आसीम एवं शाश्वत है।[7] उन्हें अव्यक्त एवं जीवात्मा के रुप में भी वर्णित किया गया है।[8] स्मृति, पुराण, आगम साहित्य भी उन्हीं की महिमा गाते हैं।[9] वे ही स्वयंभू हैं, जो विश्व के सृजन, पालन एवं संहार के लिए तीन रुप धारण करते हैं।[10]

इस दार्शनिक पक्ष से शैव धर्म एकेश्वरवादी बन गया और स्कन्दपुराण में वर्णित है कि पशुपति, सर्वज्ञ, सर्व तत्वों के मूल तत्व सनातन रुद्र भगवान ने कहा कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से भी पहले मैं प्रथम ईश्वर था तथा वर्तमान में भी मैं ही ईश्वर रहूँगा।[11] मेरे अतिरिक्त कोई नहीं है *सोऽब्रावोद भगवान् रुद्रः पशूनां तिपरीश्वराः/ सर्वज्ञ सर्वतत्वानां तत्वभूतः सनातनः।। अहमेको जगद्वारतुरासं प्रथममीश्वरः/ वर्तामि च भविष्यामि न मन्तो ऽन्योऽसित कशच्नै।।*

* पूर्व-शोध छात्र, संस्कृत विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

इस समय तक शैव एवं वैष्णव दोनों धर्मों का साथ-साथ विकास हो रहा था। दोनों धर्मों के उपासक अपने-अपने आराध्यदेव की उपासना में लगे थे लेकिन बुद्धिमान एवं प्रगतिशील लोग एक अलग मार्ग अपना रहे थे, जो अपने आराध्यदेव के स्वरुप में इन दोनों धर्मों के देवताओं की कल्पना करते थे। प्रायः सभी पुराणों में भी शिव और विष्णु की एकता पर जोर दिया गया है व वायु पुराण जो शैव पक्ष का है, में शिव को विष्णु से अभिन्न बताया गया है[12] अन्य स्थल पर दोनों को नारायण[13] तथा लक्ष्मीपति[14] कहा गया है। सौर पुराण भी शैव मत का है, में भी दोनों में कोई अन्तर नहीं बताया गया है।[15] वैष्णवपक्षीय मत्स्य पुराण में शिव को विष्णुरुपिन् तथा विष्णु को रुद्रमूर्ति कहा गया है।[16] ब्रह्मपुराण में स्वयं विष्णु ही शिव से अपनी एकता को प्रदर्शित करते है।[17] विष्णुपुराण में शिव और पार्वती को विष्णु एवं लक्ष्मी से अभिन्न बताया गया है।[18] एक अन्य वंशज में विष्णु को पिनाकधृक कहा गया है जो शिव की ही उपाधि है।[19] वराहपुराण[20] में शिव एवं विष्णु का एक ही रुप धारण किया था।[21] पुराणों में भी शिव के सृष्ट, पालक एवं संहर्ता कहा गया है जो क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव तीनों के कार्य थे।[22] शिव को महायोगी[23] तथा इसका प्रमुख आचार्य कहा गया है।[24] इन संघों में शिव को यती[25], आत्मसंयमी[26] और उर्ध्वरता[27] कहा गया है, जो उनके महायोगी होने का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। इस काल में शिव को सर्वश्रेष्ठता और उनके 'एकोऽहं न द्वितीयः' भाव पर अधिक बल दिया गया है।[28]

पुराणों में शिव के साथ-साथ पार्वती का भी वर्णन हैं। पुराणों में पार्वती को देवी, महादेवी, देवकन्या कहा गया है।[29] उन्हें जगत् जननी, सर्वशक्ति, संसार की कल्याणकारिणी कहकर उपासना की गयी है। उनकी शिव प्रिया कहकर स्तुति की जाती है। इस काल में शिव के अर्द्धनारीश्वर रुप की भी कल्पना की गयी। इसमें बायें अर्द्धांग में शिव और दाहिने अर्द्धांग में पार्वती की प्रतिमा बनायी गयी हैं। मत्स्यपुराण में शिव को अर्द्धनारीश्वर की संज्ञा देते हुए यह बताया गया है कि बहना के बरदान से पार्वती शिव के साथ स्थायी रुप से संयुक्त हो गयी थी।[30] वायुपुराण मे शिव को पुरुष और स्त्री रुपधारी कहा गया है।[31]

शिव व पार्वती की उपासना मन्दिर में ही होती थी। पुराणों में शिव-पार्वती की तीन प्रकार की मूतियों का वर्णन है। मत्स्यपुराण में इनके निर्माण के लिए विस्तृत चर्चा की गयी है।[32] इनकी लिंग मूर्तियों की भी विस्तृत चर्चा की गयी है।[33] पुराणों में वर्णित है कि देवतागण यहाँ तक कि ब्रह्म और विष्णु भी इस लिंग की पूजा करते हैं।[34] अग्निपुराण भी लिंग मूर्तियो के निर्माण व स्थापना की सूचना देता है।[35] से लिंग मूर्तियाँ पकी मिट्टी, कच्ची मिट्टी, लकड़ी, पत्थर, स्फटिक, लोहे, ताँबे, पीतल, चाँदी, सोने अथवा रत्नों की बनायी जाती थी।[36] लिंगपुराण व मुखलिंग मूर्तियों का भी वर्णन है।[37] इन मूर्तियों के अतिरिक्त शिव की अर्द्धनारीश्वर रुप की मूर्तियों का वर्णन मत्स्यपुराण में है।[38] इससे शिव पार्वती की संयुक्त उपासना पद्धति पर प्रकाश पड़ता है।

इन मूर्तियों के अलावा मत्स्यपुराण में शिव-विष्णु की संयुक्त मूर्ति का भी वर्णन है, जिससे दोनों की संयुक्त उपासना पर प्रकाश पड़ता है।[39] शिव और पार्वती की उपासना पद्धति एवं दिन के विषय में भी वर्णन मिलता है। मत्स्यपुराण में कृष्णाष्टमी के दिन गौ, भूमि, सुवर्ण और वस्त्रों का ब्राह्मणों को दान करने का विधान है और इसके उपरान्त सायंकाल शिव की उपासना की जाती थी।[40] शिव के सह-धर्मिणी के रुप में पार्वती की उपासना भी उनके साथ की जाती थी। इसके लिए सौरपुराण में उमा-महेश्वर व्रत का वर्णन है।[41] मत्स्यपुराण में भी वर्णित है कि शिव-पार्वती की उपासना एक साथ होती थी। यहाँ पार्वती को भावनी कहा गया है।

पुराणों में शिव के 'कपाली' रुप का भी वर्णन मिलता है। इस रुप में शिव का रुप भयावह बताया गया है। उन्हें कराल, क्रूर, और रुद्र कहा गया है, उनके दाँत एवं जिह्वा बाहर निकले हुए हैं।[42] उन्हें वस्त्रहीन एवं दिगम्बर कहा गया है।[43] उनके शरीर पर भस्म लगी हुयी है, जिससे वायुपुराण में उन्हें दिगम्बर कहा गया है। वे हाथ में कमण्डल लिए धूमते है। नरमुण्ड की माला[44] श्मशान उनकी प्रिय विहार भूमि है। उनके अनुचरो का स्वरुप भी शिव जैसा हैं। उन्हें निशाचर तथा कपालेश्वर भी कहा गया है। शिव के इस रुप के उपासक कापालिक कहे जाते थे, जिनका एक अलग सम्प्रदाय बन गया। पुराणों के समय तक इन कापालिकों ने रुद्र का विकास करके उन्हें 'कपालिन' का भयावह रुप दे दिया। ये लोग भी अपना रुप शिव जैया ही बनाकर धूमते थे तथा श्मशान में निवास करते थे। सौरपुराण में इनकी गणना विधर्मियों के रुप में की गयी है।

शिव के इस रुप का वर्णन ब्रह्माण्डपुराण में इस प्रकार किया गया है- स्वयं शिव कहते हैं कि वे शरीर से भभूत इसलिए मलते हैं कि वह पूर्णतया परिशुद्ध है। जो व्यक्ति भभूत से स्नान करता है, वह विशुद्धात्मा, जितक्रोध होकर शिव के धाम को

प्राप्त होता है। नग्नता पर शिव का विचार है कि इसमें कोई नहीं है, क्योंकि सब प्राणी नंगे ही पैदा होते है, अतः इससे मनुष्य के आत्मसंयम की जॉच होती है। जिनमें आत्मसंयम नहीं है। वास्तव में वे ही नंगे है। कापालिको ने नग्नता को ही अपनी जीवनचर्या का एक व्रत बताना प्रारंभ कर दिया। किसी घोर पाप का प्रायश्चित इस व्रत के द्वारा करने पर विधान बना दिया गया। एक बार स्वयं शिव जी ने ब्रह्म का सिर काट लिया था, जिसका प्रायश्चित करने के लिए कापालिक का रुप धारण कर वे दिगम्बर हो गये, शरीर पर भस्म लगाकर सभी प्रमुख तीर्थ-स्थानों की यात्रा की, जिसके फलस्वरुप ब्रह्म का सिर जो उनके हाथ में संलग्न हो गया था, छूट कर गिर गया। इस प्रकार वे ब्रह्म हत्या के पाप से मुक्त हुए।

पुराणों में शिव का एक अन्य रुप विलासिता का भी वर्णित हैं। ब्रह्माण्ड पुराण[45] में वर्णित है कि एक बार भगवान शिव विचरण करते हुए वन में महर्षियों के आश्रम तक पहॅच गये। उनके केश बिखरे हुए थे उनका शरीर आवरणहीन था तथा वन मे पहुॅचते ही वे उत्श्रृंखल होकर कभी गति कभी नृत्य तथा अट्ठहास तो कभी रोने लगते थे। आश्रम की औरतें उनके इस रुप पर मुग्ध होकर वे भी विलास लीला में संलिप्त हो गयी। इस पर महर्षिगण क्रुद्ध होकर उन्हे दण्ड देकर ब्रह्मा के पास चले गये। ब्रह्मा ने उन्हें मतवाला शिव कहा। कथा के अन्त में कहा गया कि अग्निपुराण[46] महर्षियो ने शिव विष्णु के स्त्री रुप पर मोहित हो गये थे, जिसके लिए उन्होंने पार्वती को छोड़ दिया था लेकिन अंत में विष्णु के स्त्री रुप पर मोहित हो गये थे, जिनके लिए उन्होने पार्वती को छोड़ दिया था लेकिन अंत मे विष्णु ने ही उनका मन विचलीत किया। मत्स्यपुराण[47] में पार्वती स्वयं शिव पर उनके कामुक होने की आक्षेप करती हैं। निलमह पुराण[48], जो कि एक काश्मीरी शैव ग्रन्थ है, से प्रतीत होता है कि शिव के इस रुप का वर्णन मुख्यतः इसी प्रदेश मे ज्यादा प्रचलित था, क्योकि कश्मीर में कृष्ण चतुर्दशी के दिन शैव उपासक खूब आमोद प्रमोद के साथ नाचते गाते, गणिकाओं की संगत में रात भर बिता देते थे। कश्मीर के बाहर इस प्रकार से शिव की उपासना कही भी नहीं की जाती थी। धीर-धीरे इस प्रथा का कश्मीर में भी लोप हो गया।

पुराणों में भी शिव की रौद्र एवं मंगलगय रुप का वर्णन है क्योंकि वेदोत्तर काल में जब त्रिमूर्ति की कल्पना की गयी, तब शिव के ये दोनों ही रुप स्वतः प्रकट हो जाते है उनका संहारक रुप ऋग्वैदिक रुप की याद ताजा कर देता है। लेकिन उनका यह रुप उत्तर वैदिक काल में भी धीरे-धीरे फीका लगता है। उग्र रुप में उन्हें पुराणों में क्रूर भयावह, महानाशकारी कहा जाता है। उन्हें चण्ड, भैरव, महाकाल आदि उपाधियाँ दी गयी हैं।[49] इस रुप में उन्हें रक्तवर्ण, क्षपर्ण, भीम एवं साक्षात् मृत्यु भी कहा गया है।[50] यक्षों को निर्दयी, मृत्मांस भक्षी, अभोज्य-भक्षक एवं मरणशील जीव कहा गया है इनकी सृष्टि स्वयं शिव ने ही की थी। वायुपुराण में उन्हे काल कहा गया है।[51] एकादश रुद्रों का भी वर्णन किया गया है जो वैदिक रुद्र के रुप में उग्र रुप को भी प्रदर्शित करता है। उनका उल्लेख देवताओं और मानवों के शत्रुओं के संहारक के रुप में भी किया गया है जिसका मुख्य उदाहरण 'अन्धक वध' है।[52]

पुराणों के समय में शिवोपासना के पीछे रुढ़िवादियों मे एक विरोध भावना भी पनप रही थी। पुराणों में भी कही-कही शिव की निंदा की गयी है, जिसके पीछे संभवतः तत्कालीन विरोध भावना ही काम कर रही थी। मत्स्यपुराण[53] में स्वयं पार्वती ही शिव को कहती है कि- वे धूर्त है, उन्होंने सर्पों से द्विअर्थीय बात सीखी है। ललाट के चन्द्रमा से हृदय में कालापन लिया है, भस्म से स्नेहभाव, वृषभ से दुर्बुद्धि, श्मशान निवास से निर्भीकता, नग्नता से उनकी लज्जा का हरण हो गया है। कपाल धारण से घृणित तथा उनमें दया का भी लोप हो गया है। पार्वती ने उन्हें स्त्री लम्पट भी कहा गया है। ब्रह्म पुराण में शिव को पार्वती की माता 'मैना' ने एक भिखारी, जिसके तन ढकने के लिए एक वस्त्र भी नहीं है, कहा है।[54] संभवतः इसी विरोध भावना से ही मिलाकर उनकी श्रेष्ठता को भी देखा जा सकता है। जिसके विषय में विचारणीय है कि स्वयं ब्रह्मा और विष्णु ने एक बार उनकी श्रेष्ठता को मानने से इनकार कर दिया है। वायुपुराण[55] में कहा गया है कि जब ब्रह्मा ने शिव को देखा तो उस समय उनका मुख गुफा कि तरफ तथा दोनों ओर वड़ें-बड़ें दॉत बाहर की ओर निकले हुए थे। केश अस्त व्यस्त एवं मुखाकृति बिगड़ी हुई थी। इसी ब्रह्मा ने उनका अस्तित्व स्वीकार करने से इनकार कर दिया फिर विष्णु ने ब्रह्मा को शिव की श्रेष्ठता का ज्ञान कराया। वराहपुराण[56] में एक कथा के अनुसार जब सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने शिव से विविध प्राणियों को सृजन करने को कहा तब शिव ने इस कार्य के लिए अपने आप को असमर्थ पाया। सम्भवतः इसी क्षमता की प्राप्ति हेतु वे जलमग्न हो गये उनकी अनुपस्थिति में ब्रह्मा ने सात प्रजातियों के साथ से सृष्टि का कार्य प्रारम्भ कर दिया। ठीक उसी समय शिव जी जल से बाहर आये तथा सृष्टि के निर्माण होने से क्रोधित होकर यज्ञ ध्वंस संकल्प किया। उस समय उनके कानों से

लपटें निकल रही थीं, जो बेताल और पिशाच बन गयी, जिसके साथ वे यज्ञ स्थल में पहुँचे थे। शिव को राक्षस समझ कर ऋत्विज मन्त्र ही भूल गये। दक्ष की आज्ञा से देवताओं ने शिव से युद्ध किया लेकिन वे हार गये। भग की तो ऑख ही चली गयी एवं पूषन का जबड़ा भी टूट गया। अन्त में ब्रह्मा ने बीच-बचाव कर उन्हें यज्ञ भाग दिलाया तथा उन्हें विष्णु के समकक्ष देवता माना। कथा के उत्तर भाग[57] में वर्णित है कि दक्ष की पुत्री सती, जो जलमग्न से पहले शिव को अपना पति मान चुकी थी, इस बात से अत्यधिक दुखी थी कि शिव के कारण उनके पिता का यज्ञ विध्वंस हुआ। अतः वे पति का त्याग करके सती हो गयीं। लेकिन अन्य पुराणों में यह कथा विपरीत रुप में व्यक्त है, जिसमें सती को इस बात से अत्यधिक दुःखी थी, कि शिव के कारण उनके पिता शिवद्रोही थे तथा शिव की निन्दा में अपशब्द भी कहे। दक्ष द्वारा शिव को यह भाग न देना, उनका निन्दा करना इस बात का द्योतक है कि प्राचीन ब्राह्मण धर्म के अनुयायी अपने धर्म के अनुयायी अपने धर्म में एक ऐसे देवता को स्थान देने के लिए तैयार नहीं थे, जिसके स्वरुप और उपासना को वे अच्छा नहीं समझते थे।

लेकिन शिव के प्रति यह विरोध भावना धीरे-धीरे समाप्त हो गयी और रामायण महाभारत काल तक आते-जाते वे एक सर्वमान्य देवता के रुप में प्रतिष्ठित हो गये थे। सौर पुराण[58] में एक स्थल पर उस समय का वर्णन किया गया है जब शैवमत की ओर कम लोग ही आकृष्ट होते थे। लेकिन पुराणों के समय तक यह प्रकिया धीरे-धीरे पूरी हो चुकी थी और शैवमतों के मूल सिद्वान्तों और प्रमुख आचारों में ज्यादा परिर्वतन आ चुका था, जिससे धीरे-धीरे शैव मत के उपासकों की संख्या बढ़ती गयी।

संदर्भ

[1]*वायुपुराण,* 1203
[2]*ब्रह्मपुराण,* 1.1.173
[3]*ऋग्वेद,* 5.54.9
[4]*अथर्ववेद,* 15.1.6
[5]*रामायण,* 9.1
[6]*सौरपुराण,* 6.30,38.1;38.90; लिंगपुराण, 21.16; अग्निपुराण 88.7, बह्म, 1.29
[7]*लिंगपुराण,* 2-21.49; वायुपुराण 55.3;रुणपुराण 16.6-7
[8]*वायुपुराण,* 24.71;54.74; अग्निपुराण 74.82.
[9]*ब्रह्मपुराण,* 36.39 ब्रह्माण्ड 38.9-92
[10]*वायुपुराण,* 66.108, लिंगपुराण 2,1.1
[11]*स्कन्दपुराण,* 1.2.78
[12]*वायुपुराण,* 26.21
[13]वही, 54.77
[14]वही, 24.111
[15]*सौरपुराण,* 24.68
[16]*मत्स्यपुराण,* 154.7;249,38;259.30
[17]*ब्रह्मपुराण,* 206.47
[18]*विष्णुपुराण,* 8.21
[19]वही, 9,98
[20]*वराहपुराण,* 9.7
[21]वही, 10.16
[22]*ब्रह्मपुराण,* 127.8
[23]*वायुपुराण,* 25,156
[24]*ब्रह्मपुराण* 1.3.20;6.4

[25]*मत्स्यपुराण,* 47.138, वायुपुराण 17.166
[26]*मत्स्यपुराण,* 47.138; 132.86;वायुपुराण 24,162
[27]*मत्स्यपुराण* 47.146; वायुपुराण 10.64;24.134, ब्रह्माण्डपुराण, 8.88
[28]*मत्स्यपुराण,* 136.5; सौरपुराण, 7.17;38.1;38.14
[29]*सौरपुराण,* 25.13-23; मत्स्यपुराण 13.18
[30]*मत्स्यपुराण* 60.62;157.12
[31]*वायुपुराण,* 24.141
[32]*मत्स्यपुराण,* 216.23
[33]वही, 182.9‘ 185.57; 193.10;सौरपुराण, 4.3; अग्निपुराण 53.1
[34]*सौरपुराण,* 41.9: लिंगपुराण, 73.7;74.2
[35]*अग्निपुराण* 54.8
[36]वही, 54.1
[37]*लिंगपुराण,* 54.41-48
[38]*मत्स्यपुराण,* अध्याय- 260
[39]*मत्स्यपुराण,* अध्याय -260
[40]वही, अध्याय 56
[41]*सौरपुराण,* अध्याय- 43 एवं लिंगपुराण -अध्याय-84
[42]*मत्स्यपुराण,* 47.127; अग्निपुराण, 324.16
[43]वही, 153.23; ब्रह्मपुराण -1, 27.10, सौरपुराण 41.96
[44]*वायुपुराण,* 24.140;वराहपुराण 25.24; अग्निपुराण 322,2 ब्रह्मपुराण 37.13
[45]*ब्रह्माण्डपुराण -1,* अध्याय - 27
[46]*अग्निपुराण,* 3.18
[47]*मत्स्यपुराण,* 155.31
[48]*नीतलमपुराण,* श्लोक 559
[49]*मत्स्यपुराण,* 252.10;ब्रह्मपुराण 43.66; अग्नि 76.5
[50]*मत्स्यपुराण,* 47.128
[51]*वायुपुराण,* अध्याय -31.32; लिंगपुराण भाग -1,
[52]*मत्स्यपुराण,* अध्याय- 179; लिंगपुराण भाग -1, अध्याय 93
[53]*मत्स्यपुराण,* 156.6
[54]*ब्रह्मपुराण,* 24,26-27
[55]*वायुपुराण,* 24.25
[56]*वरहापुराण,* अ 021
[57]वही, अध्याय - 22
[58]सौरपुराण. 38.6 - 10

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,10-13
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 13 सितम्बर 2016

ऋग्वेदीय उषस् सूक्तों का प्राकृतिक-सौन्दर्य

डॉ. सुमन दूबे*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *ऋग्वेदीय उषस् सूक्तों का प्राकृतिक-सौन्दर्य* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सुमन दूबे* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

प्रकृति का मानव के साथ अनादि काल से सम्बन्ध रहा है। जन्म से मनुष्य ही नहीं बल्कि समस्त पशु-पक्षी भी स्वयं को प्रकृति के प्रांगण में क्रीड़ा करते हुये पाते हैं। मनुष्य एक वाणी-युक्त प्राणी है; इसीलिये वह प्रकृति के क्रिया-कलापों को देखकर आनन्दित एवं आह्लादित होता है और उन स्वानुभूतियों को वाणी के माध्यम से व्यक्त कर दूसरों तक संप्रेषित करता है। पशु-पक्षी प्रकृति का अवलोकन कर आनन्दानुभूति तो करते हैं, किन्तु मूक होने के कारण उसको अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं। यही प्रकृति वैदिक ऋषियों की चिरसंगिनी रही है। उन कवि-हृदय ऋषियों को एक क्षण भी प्राकृतिक उपादानों से पृथक नहीं किया जा सकेता है। प्रकृति के बिना उनका अस्तित्व ही प्रतीत नहीं होता है। ये मनोरम प्राकृतिक उपादान वैदिक ऋषियों को पूर्णरूपेण अनुस्यूत किये हुए हैं। ऋषियों ने प्रकृति सुन्दरी के सुनहरे और झिलमिलाते अंचल में तन्मय होकर हृदय-स्पर्शी साम गान किया।

विभिन्न ऋषियों प्रस्कण्व काण्व, गोतमो राहूगण, कुत्स आङ्गिरस, कक्षीवान्, वैश्वामित्र, वामदेव, सत्यश्रवा, आत्रेय भारद्वाज, बार्हस्पत्य, वसिष्ठ आदि ऋषियों ने उषस् सूक्तों की ऋचाओं का गान करते समय इसी प्रातःकालीन प्राकृतिक शक्ति से स्वयं को उपकृत अनुभव किया। उषस् सूक्त प्रातः कालीन प्राकृतिक शक्ति के प्रतिनिधि स्वरूप हैं। यह देवी द्युलोक से सम्बद्ध है। उषा देवी की आराधना के द्वारा ऋषियों ने प्रातः कालीन शक्ति या तत्त्व की उपासना की।

उषस् सूक्तों में वैदिक ऋषियों की प्रकृति के प्रति कोमल एवं उदात्त भावनाएँ हैं। इन भावनाओं को दो प्रकार से अभिव्यक्त किया गया है। ''प्रकृति का आलम्बन के रूप में वर्णन है। प्रकृति के इस रूप में उसकी नैसर्गिक सुषमा ने वैदिक ऋषियों को आकर्षित किया एवं अपने इस प्राकृतिक आनन्दानुभूति के द्वारा सहृदयों को रस-सिक्त किया। उषस् सम्बन्धी सूक्तों में प्रकृति के इस रूप का सुन्दर निरूपण हुआ है। स्वर्णिम प्रकाश बिखेरने वाली उषा देवी को देखकर कवि-हृदय पुलकित हो अकस्मात् सुन्दर वाणी में आह्वान करता है।

* 352/ 158, अलोपीबाग, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्रकृति का दूसरा रूप भी उषस् सूक्तों में प्राप्त होता है। प्रकृति और उसके कार्य व्यापारों का मानवीकरण के द्वारा प्रस्तुत करना। मनुष्य के समान प्रकृति भी विभिन्न कार्य सम्पादित करती है। प्रसन्नवदना सुन्दरी सभी के हृदय को आकृष्ट करती है।

ऋग्वेद में विभिन्न प्राकृतिक देवता पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, सोम, द्यावापृथिवी, आदित्य, रात्रि तथा उषस् का वर्णन है। ऋषियों ने इन देवताओं से सम्बन्धित मंत्रों का दर्शन किया इसीलिये ऋषियों को मंत्रद्रष्टा कहा गया है- *ऋषयो मंत्रद्रष्टारः।* प्रत्येक देवता प्रकृति के विभिन्न शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रकृति की इन्हीं महान शक्तियों को देवता नाम प्रदान किया गया है।

निरूक्ताचार्य यास्क ने देवता शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है -*देवो दानाद् वा दीपनाद् वा द्योतनाद् वा...।*[१] अर्थात् देवता यज्ञ के दाता, दीपयिता एवं द्योतयिता होने के कारण देवता कहे गये हैं। ऋग्वैदिक उषा देवी देवताओं के इन तीनों गुण दान, दीपन् और द्योतन् गुणों से युक्त है। उषा का आगमन पूर्णतः एक प्राकृतिक घटना है, जो सम्पूर्ण सृष्टि में दृष्टिगत होता है। उसके आगमन से समस्त प्राणी उल्लसित, आनन्दपूर्ण एवं प्रेरित हो जाता है। उषा देवी का यह प्राकृतिक सौंदर्य अतुलनीय है। अत्यधिक अश्वों तथा गौओं वाली उषा संसार को प्रकाशित करते हुए प्रिय एवं हितकारी वाणी को प्रेरित करती है।[२]

प्रसिद्ध विद्वान मैक्समूलर के मतानुसार ऋग्वेद संहिता के कुछ मंत्रों में जहाँ अश्वः और गौः पद का प्रयोग हुआ है वहाँ अश्व और गाय दोनों ही सम्भवतः प्रातः कालीन अरूण रश्मियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, किन्तु गायों की साधारणतया प्रातः कालीन लाल मेघों के रूप में व्याख्या की गई है।[३]

उषा की चमकती हुई कल्याणकारी किरणें प्राणिमात्र को दृष्टिगोचर होती हैं।[४] कल्याणकारी मार्गों के द्वारा दीप्तिमान अन्तरिक्ष लोक से उषा का आह्वान किया गया है। इसकी अरूण अर्थात् लाल रंग की किरणें सोम से युक्त होकर यजमान के गृह देवयजन रूप यज्ञगृह उषा को लावे।[५] अपनी शक्तियों के द्वारा अंधकार को हटाती हुई उषा देवी संसार को प्रकाशित करती है।[६]

समस्त पदार्थों को प्रज्ञापित करती हुई अन्तरिक्ष के प्रथम अर्द्ध-भाग में प्रकाश के द्वारा सबको प्रकाशित करती है। योद्धाओं के समान गमनशीला चमकीली यह उषा लौट जाती है या उसी मे लीन हो जाती है।[७] उषा रूपी स्त्रियाँ अपनी रश्मियों के द्वारा समान योजना से दूर देश आकाश को उसी प्रकार सुन्दर बनाती है जैसे युद्ध कर्मी वीर शास्त्रों को रणक्षेत्र में सुन्दर बनाते हैं।[८] समस्त चेतन जगत के लिये प्रकाश करती हुई अंधकार को इस प्रकार मिटा देती है जैसे गायें गोशाला से मुक्त हो जाती हैं।[९] उषा की चमकीली लाल रंग की ज्योति तीनों लोकों में दृष्टिगोचर होती हुई कृष्णवर्णी महत् अंधकार को दूर करती है, अपने रूप को सँवारती हैं जैसे यज्ञकर्ता यज्ञ में खम्भों को सँवारता है तदनन्तर पूजनीय सूर्य की यह द्युलोक पुत्री प्रतीक्षा करती है।[१०] यह उषा चाटुकार की भांति प्रकाश के ऐश्वर्य में मंद-मंद मुस्कराती है। प्रकाश करती हुई सुन्दर मुख वाली उषा ने प्राणियों के सौभाग्य के लिये अंधकार को निगल लिया।[११] उषा अपनी किरणों को सारे जगत में ऐसे फैला देती है जैसे गोपालक अपने पशुओं को अरण्य में फैला देता है, अथवा जैसे प्रवाहित होता हुआ जल नीचे की ओर जाता है। सूर्य की रश्मियों के साथ दृष्टिगोचर होती हुई उषा देव सम्बन्धी व्रतों या कार्यों का उल्लंघन नहीं करती है।[१२] आदित्यादि ज्योतिमान पदार्थों के बीच सर्वोत्तम उषा नाम की ज्योति आ रही है। वह दर्शनीया, सुप्रसिद्ध, सर्वव्यापक उत्पन्न हुई, जैसे उत्पन्न रात्रि सूर्योदय के लिये सूर्य-रहित स्थान में चली जाती है उसी प्रकार वह रात्रि उषा के लिये स्थान रिक्त कर देती है।[१३] उषा के लिये *गवां माता असि* पद आया है।[१४] उषा की कल्याणकारी किरणें वर्षा की झंडी के समान दृष्टिगोचर होती है।[१५] ऋषि अत्यंत आह्लादित होते हुये कहते हैं -*प्रथमा केतनः अदृश्रन्* अर्थात् मैंने सर्वप्रथम इसकी रश्मियों को देखा।[१६] समस्त सृष्टि का संचालन करने के लिये रथों को प्रेरित करने के कारण उषा को *स्थानां जीरा* कहा गया है। इसके आगमन के समय रथ सुसज्जित हो जाते हैं।[१७] यह सूर्योदय स्थान द्युलोक से भी आगे से रथों को योजित करती है।[१८] सौभाग्यवती उषा सौ रथों के साथ मनुष्यों के प्रति विशेष रूप से जाती है। उषस् का रथ शोभन रूप से युक्त और सुखदायक है जिस रथ पर वह बैठी हुई है उसी रथ से द्युलोक पुत्री का शोभन हवि से युक्त यज्ञ में यजमान के समीप आने का ऋषि आह्वान करता है।[१९] ऋषि उषा

से प्रार्थना करता है कि हे उषा! बृहद् तथा ज्योतिष्मान् रथ के द्वारा हमारे लिये वरणीय धन को लाओ।[२०] यह उषा स्वाभाविक शक्ति से योजित किये गये रथ पर बैठती है। जिस रथ को भलीभांति नियुक्त किये गये अश्व वहन करते हैं।[२१] उषा देवी के रूप और कार्यों पर मानवीय रूप और कार्यों का आरोप अत्यन्त सुन्दरतापूर्वक किया गया है। प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व उत्पन्न होने पर भी पुरातनी, समान रूप वाली शोभायमान होती हुई उषा देवी मनुष्यों की आयु को हिंसित करती है जैसे कर्तन शील लुब्धक की पत्नी पक्षी को हिंसित करती है।[२२] द्युलोक के प्रान्त भाग को अंधकार रहित करती हुई अपनी बहिन रात्रि को बहुत दूर स्थान में अवकाश प्रदान करती है। उषा देव सम्बन्धी कार्यों का उल्लंघन नहीं करती है।[२४] शोभन वस्त्रा युवती के समान हंसती हुई अपने पति सूर्य के समीप जाती है।[२५] उषा नर्तकी की भांति अपने रूप को अनावृत करती है। वक्ष को अनावृत करती है जैसे गाय दूध देने से पूर्व अपने थन को।[२६] यह उषा चाटुकार की भांति प्रकाश के ऐश्वर्य में मन्द-मन्द मुस्कराती है। प्रकाश करती हुई सुन्दर मुख वाली उषा ने प्राणियों के सौभाग्य के लिये अंधकार को निगल लिया।[२७] गृहपत्नी के समान सोते हुये लोगों को जगाती है, जाकर पुनः आने वालियों से नित्य यह उषा पुनः आ रही है।[२८] यह उषा अपने माता-पिता द्यावापृथिवी की गोद को तेज से पूर्ण करती हुई विशाल फैला हुआ प्रकाश विशेष रूप से फैलाती है।[२९] भ्रातृ-रहित कन्या जिस प्रकार वापस लौटी हुई पिता के सेवार्थ प्राप्त होती है, धनों की प्राप्ति के लिये पति रहति स्त्री जैसे सभामंच पर आरोहण करती है, पति की कामना करती हुई, उत्तम वस्त्र पहने हुए जिस प्रकार पति के पास पहुँचती है, हँसमुख स्त्री जैसे अपने दांतो को प्रकाशित करती है, उसी प्रकार उषा सब पदार्थों के स्वरूप को प्रकाशित करती है।[३०] बहिन (रात्रि) बड़ी बहिन (उषा) के लिये उत्पत्ति स्थल को रिक्त कर देती है। इसको देखकर सूर्य की रश्मियों के द्वारा प्रकाश करती हुई तेज को प्रकाशित करती है।[३१] इन पूर्वकालीन बहिनों में से दिनों में एक पूर्व की और जाती है, दूसरी पश्चिम की ओर जाती है।[३२] ऋषि उषा से प्रार्थना करता है कि हे धनवति उषा! उदार-दाता को प्रकृष्ट रूप से बोधित करो। कृपण व्यापारियों को जागृत न करते हुये दीर्घनिद्रा में सुला दो।[३३] उषा को *पुराणी-युवती* की संज्ञा प्रदान की गई है।[३४] वह पुरानी होने पर भी नित्य नवीन बनी रहती है। ये शुभ्रवर्णा स्त्री के समान उषायें अपने शरीर को प्रज्ञापित करती हैं; स्नान करते उठी हुई स्त्री को समान समस्त प्राणियों के दर्शन के लिये उदित होती है।[३५] समस्त प्राणियों को संचरण के लिये प्रेरित करती हुई युवती स्त्री के समान दीप्तिमती होती है।[३६] अन्त में ऋषि अपने आपको उषा को समर्पित करता हुआ कहता है- *वयं स्याम मातुर्न सूनवः* अर्थात् उषा के माता के पुत्रों के समान हम लोग उषा के प्रिय हो जायें।[३७] ऋषि अनेक मंत्रों में बार-बार सदैव कल्याणकारी कार्यों के द्वारा उषा से अपनी रक्षा करने के लिये कामना करता है- *यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।*[३८]

जिस प्रकार शरीर के अवयवों में सिर प्रधान होता है, उसी प्रकार दिन के अवयवों में उषा काल प्रधान है। प्रातरनुवाक के प्रथम भाग के देवता अग्नि द्वितीय भाग की देवी उषा तथा तीसरे भाग के देवता अश्विनद्वय हैं। ऋग्वेद में उषा का स्वरूप अनेक विशेषणों से युक्त है। इन विशेषणों के द्वारा उषस् का प्राकृतिक सौन्दर्य भलीभाँति दृष्टिगोचर होता है। वह अपने प्रकाश से समस्त सृष्टि को प्रकाशित करती हुई अंधकार को दूर करती है मानों वह मनुष्य मात्र को स्वयं प्रकाशित होते हुए दूसरों को भी प्रकाशित करके उसके अज्ञानता के अंधकार को दूर करने का उपदेश देती है। वह सभी के मार्ग को सुगम्य बनाते हुए सम्पूर्ण पृथिवी को भयरहित करती है और हमारे शत्रुओं को दूर भगा देती है। इस प्रकार उषा देवी प्रकृति के सौंदर्य के माध्यम से परोपकारी, कर्मनिष्ठ और प्रकाशित करने का गुण सम्पूर्ण सृष्टि को प्रदान करती हैं। हमें उषा के इन प्राकृतिक गुणों को आत्मसात और हृदयंगम करने की आवश्यकता है। अन्ततः हम कामना करते हैं कि जिन मनुष्यों ने प्रकाश करती हुई अतीत काल की उषा को देखा वे चले गये। हम लोग इस समय वर्तमान काल की उषा को देख रहें हैं। आगामी काल में जो देखेगें वे आ रहें हैं- *ईयुष्टेयेपुर्वतरामपश्यमन्व्युच्छन्तीमुषसंमत्यीसः। अस्माभिरूनुप्रतिचक्ष्यामभूदोतेयन्तिअपरीषुपश्यान्।।*[३९]

संदर्भ

[1] *निरुक्त,* 7.15

[2] *ऋग्वेद,* 1.48.2 (अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदोभूरिंच्यवन्तवस्तवे। उदीरयप्रतिमासूनृताउषश्चोदराधोमधोनाम्।।)

[3]*वैदिक माइथालाजी* -(अनुवादक) राम कुमार राय

[4]*ऋग्वेद,* 1.48.7 (विश्वान्देवाँआवहसोमपीतयेऽन्तीरक्षादुषस्त्वम्। सास्मासुधागोमदश्वावदुक्थयं1मुषोवाजंसुवीर्यम्।।)

[5]*ऋग्वेद,* 1.49.1 (उषाभद्रेभिरागहिदिवश्चिद्रोचनादधि। वहन्त्वरूणप्सवउपत्वासोमिनोगृहम्।।)

[6]*ऋग्वेद,* 1.48.15 (उषोयदद्यभानुनाविद्वारावृणवोदिवः। प्रनोयच्छतादवृकंपृथुच्छर्दिःप्रदेविगोमतीरिषः।।)

[7]*ऋग्वेद,* 1.92.1 (एताउत्याउषसः केतुमक्रतपूर्वेअर्धेरजसोभानुमञ्जते। निष्कृण्वानाआयुधानीवधृष्णवः प्रतिगावोरुषीर्यन्तिमातरः।।)

[8]*ऋग्वेद,* 1.92.3 (अर्चन्तिनारीरपसोनविष्टिभिः समानेनयोजनेनापरावतः। इषंवहन्तीः सुकृतेसुदानवेविश्वेदहयजमानायसुन्वते।।)

[9]*ऋग्वेद,* 1.92.4 (ज्योतिर्विश्वस्मैभुवनायकृण्वतीगावोनव्रजंव्यू1षाआवर्तमः।।)

[10]*ऋग्वेद,* 1.92.5 (प्रत्यर्चीरूशदस्याअदर्शिवितिष्ठतेबाधतेकृष्णमभ्वम्। स्वरूंनपेशोविदथेष्वञ्जश्चित्रंदिवोदुहिताभानुमश्रेत्।।)

[11]*ऋग्वेद,* 1.92.6 (अतारिष्मतमसस्पारमस्योषाउच्छन्तीवयुनाकृणोति। श्रियेछन्दोनस्मयतोविभातीसुप्रतीकासौमनसायाजीगः।।)

[12]*ऋग्वेद,* 1.92.12 (पशून्नचित्रासुभगाप्रथानासिन्धुर्नक्षोदउर्वियाव्यश्चैत्। अमिनतीदैव्यानिव्रतानिसूर्यस्यचेतिरश्मिभिर्दृशाना।।)

[13]*ऋग्वेद,* 1.113.1 (इदंश्रेष्ठंज्योतिषांज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतोअजनिष्टविभ्वा। यथाप्रसूतासवितुः सवायॅ एवारात्र्युषसेयोनिमारैक।।)

[14]*ऋग्वेद,* 7.77.2 (गवां माता असि)

[15]*ऋग्वेद,* 4.52.5 (प्रति भद्रा अदृक्षत गवा सर्गा न रश्मयः।)

[16]*ऋग्वेद,* 7.78.1 (प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रनूर्ध्वांअस्या अञ्जयो विश्रयन्ते।)

[17]*ऋग्वेद,* 1.48.3 (उवासोषाउच्छाञ्चनुदेवीजीरारथानाम्। येअस्थाआचरणेषुदध्रिरेसमुद्रेनश्रवस्यवः।।)

[18]*ऋग्वेद,* 1.48.7 (एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि। शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वियात्यभि मानुषन्।।)

[19]*ऋग्वेद,* 1.49.2 (सुपेशसंसुखंरथंयमध्यस्थाउषस्त्वम्। तेनासुश्रवसंजनंप्रावाद्यदुहितर्हिवः।।)

[20]*ऋग्वेद,* 7.78.1 (उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि।।)

[21]*ऋग्वेद,* 7.78.4 (आस्थाद्रथंस्वधयायुज्यमानमायमश्वासःसुयुजोवहन्ति।।)

[22]*ऋग्वेद,* 1.92.10 (पुनःपुर्नजायमानापुराणीसमानंवर्णमभिशुंभमाना। श्वघ्रीवकृत्नुर्विजअमिनानामर्तस्यदेवीजरयन्त्यायुः।।)

[23]*ऋग्वेद,* 1.92.11 (व्योर्णवतीदिवोअन्ताँअबोध्यपस्वसारंसनुतर्युयोति। प्रमिनतीमनुष्यायुगानियोषाजारस्यचक्षसाविभाति।।)

[24]*ऋग्वेद,* 1.92.12

[25]*ऋग्वेद,* 1.124.7 (जायेवपत्यउशतीसुवासाउषाहस्रेवनिरिणोतेअप्सः।।)

[26]*ऋग्वेद,* 1.124.4 (ज्योतिर्विश्वास्मैभुवनायकृण्वतीगावोनव्रजंव्यू1षाआवेर्तमः।।)

[27]*ऋग्वेद,* 1.92.6 (अतारिष्मतमसस्पारमज्ञयोषाउच्छन्तीवयुनाकृणेति। श्रियेछन्दोनस्मयतोविभातीसुप्रतीकासौमनसायाजीगः।।)

[28]*ऋग्वेद,* 1.124.4 (उपोअदर्शिशुन्ध्युवोनवक्षोनोधाइवाविरकृतप्रियाणि। अद्नसन्न ससतोबोधयन्तीशश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणीम्।।)

[29]*ऋग्वेद,* 1.124.5 (व्युप्रथतेवितरंवरीयओभापृणन्तीपित्रोरूपस्था।।)

[30]*ऋग्वेद,* 1.124.7

[31]*ऋग्वेद,* 1.124.8 (स्वसास्वस्रेज्यायस्यैयोनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव। व्युच्छन्तीरश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यूङ्क्तेसमनगाइवव्रा।।)

[32]*ऋग्वेद,* 1.124.9 (आसांपूर्वासामहसुस्वसृणामपरापूर्वामभ्येतिपश्चात्। ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मेरेवदुच्छन्तुसुदिनाउषासः।।)

[33]*ऋग्वेद,* 1.124.10 (प्रबोधयोषः पृणतोमघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु। रेवदुच्छमघवद्मोमधोनिरेवत्स्तोत्रेसूनृतेजारयन्ती।।)

[34]*ऋग्वेद,* 3.61.1 (पुराणीदेव्रियुवतिः पुरन्धिरनुव्रतंचरसिविश्चवारे।।)

[35]*ऋग्वेद,* 5.80.5 (एषाशुभ्रानतन्वोविदानोर्ध्वेवस्नातीदृशयेनोअस्थात्। अपद्वेषोबाधमानातमांस्युषादिवोदुहिताज्योतिषागात्।।)

[36]*ऋग्वेद,* 7.71.1 (उपोरुरूचेयुवतिर्नयोषाविश्वजीवंप्रसुवन्तीचरयै। अभूदग्निः समिधेमानुषाणामकर्ज्योतिबाधमानातमांसि।।)

[37]*ऋग्वेद,* 7.8104 (इमहेवयंस्याममातुर्नसूनवः)

[38]*ऋग्वेद,* 7.75.8,.76.77.6;78.5; 79.5;80.3 (यूयं पात स्वस्तिमिः सदा नः)

[39]*ऋग्वेद,* 1.113.11

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,14-18
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 02 सितम्बर 2016

वैदिक देवताओं के आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक स्वरुप

डॉ. शारदा कुमारी*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वैदिक देवताओं के आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक स्वरुप* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *शारदा कुमारी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

वैदिक साहित्य में विभिन्न देवताओं का विषद रूप से वर्णन हुआ है। जिस विधान द्वारा प्राकृतिक नियम शासित होते हैं, उसी का नाम ऋत या धर्मविधान है। जहॉ यह धर्मविधान है, वहॉ किसी चेतन नियामक की स्वीकृति स्वतः सिद्ध है। ऐसी धारणा बनी कि इस जगत् के कार्य व्यापार का संचालन करने वाला कोई श्रेय व अत्यन्त बुद्धि सम्पन्न चेतन पुरूष ही है जो विचारशील एवं धर्मप्रवण है। वही इस जगत्का शास्ता, नियन्ता और अधिष्ठाता है। वेद में इस प्रकार की चेतन सत्ता के संकेत हैं। इसी चेतन सत्ता का नाम देवता है। वेदों के विचारशील ऋषियों ने आत्म चिन्तन द्वारा अनुभव किया कि यह समस्त जागतिक प्रपंच वास्तविक नहीं है। इसका अन्त अत्यन्त दुखःमय है परन्तु दुःखों को परम सुख में परिवर्तित किया जा सकता है। इस हेतु उन्होंने देवताओं की प्रार्थना की और विशिष्ट उपासनाओं द्वारा उन्हें प्रसन्न किया। ऋषियों के विचार से देवता ही एकमात्र ऐसे साधन हैं, जो प्रसन्न होकर उपासक का उपयुक्त मार्ग दर्शन कर सकते हैं तथा आधिभौतिक समृद्धि एवं आध्यात्मिक लाभ पहुँचा सकते हैं। वैदिक ऋषियों ने देवताओं का वर्णन करते हुए स्वयं भी उनमें मानवत्व का निरूपण किया है। उनके चरित्रों, रूपों, अधिष्ठानों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वे विशिष्ट मानव हैं जिनमें मानवों जैसी आकांक्षाएँ एवं प्रेरणाएँ विद्यमान हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि वे मानवों की भॉति उत्पन्न तो हुए हैं किन्तु मानवों की तरह उनकी मृत्यु नहीं होती। वे प्रकृति की गोचर घटनाओं के दैवीकृत प्रतिनिधि हैं। वेदों में इस देवता विषयक मानवारोपण में एकमात्र लोकानुग्रह की आकांक्षा विद्यमान हैं। देवगण स्वयं सत्य के पोषक, नैतिक आदर्शों के संरक्षक जगत् के नियामक तथा प्राण शक्ति के स्रोत हैं। वे क्षेम, यश तथा श्रेय के कारण भी हैं। उन्हीं से प्रेरित होकर मनुष्य अनृत से सत्य की ओर तथा हिंसा से अहिंसा की ओर प्रवृत्त होता है। देवगण सर्वदा मनुष्य के भद्र तथा कल्याण में विरत रहते हैं। देवताओं के इसी कल्याणकारी कृत्य को आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक रूप से वर्गीकृत करते हुए देवताओं के स्वरूप एवं उपादेयता पर इस शोध पत्र में चर्चा की गयी है।

* भूतपूर्व अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, ई. सी. सी. इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ऋग्वेद में देवताओं के सामर्थ्य और शक्ति का प्रतिपादन किया गया है जिसका तीन रूपों में चर्चा मिलती है। पहला, स्थूल रूप (आधिभौतिक रूप) जो नेत्रों से देखा जा सकता है, दूसरा गूढ़ रूप (आधिदैविक रूप) जो इन्द्रियों से अग्राह्य तथा अतीत है और तीसरा आध्यात्मिक रूप जो अध्यात्म से आभासित होता है। ऋग्वेद का एक मंत्र ''ज्योति'' के रूप में सूर्य के इन्हीं तीनों रूपों का उत्, उत्तर और उत्तम रूप में वर्णन करता है।[1]

ऋग्वेद में इन्द्र के लिए ढाई सौ सम्पूर्ण सूक्त हैं और यदि अन्य सूक्तों में जहॉ अन्य देवों के साथ इन्द्र की स्तुति की गयी है, उसे जोड़कर तो लगभग तीन सौ सूक्त हो जाते हैं।

मैकडॉनल के शब्दों में ''इन्द्र का अर्थ अनिश्चित है, इससे किसी भी प्राकृतिक दृश्य का बोध नहीं होता। फलतः इन्द्र का स्परूप अत्यन्त मानवीय बनकर गाथात्मक कल्पना से चमचमा उठा है। प्रथमतः वे विद्युत के देवता हैं। अवर्षण और अंधकार के राक्षसों पर विजय पाना और उसके परिणामस्वरूप जल को प्रवाहित करना अथवा प्रकाश का प्रसार करना उनके स्वरूप के गाथात्मक तत्व हैं। गौण रूप से इन्द्र युद्ध के देवता हैं और आर्यों की सहायता करते हैं।''[2]

इन्द्र तत्व वैदिक साहित्य का एक विशिष्ट प्रतिपाद्य है। संहिताओं के मन्त्रों में तो इन्द्र को परमात्मा, महाबली, देव श्रेष्ठ बताया ही गया है, इसके साथ साथ ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों में भी इन्द्र को अद्वितीय, आत्मा, जीवात्मा, प्राण आदि कहा गया है। इन्द्र (ऋ0 1.51.9) में धार्मिकों के हितैषी कहे गए हैं।

इन्द्र बल के देवता हैं। बल से वे वृत्र का वध करते हैं। फलतः पृथ्वी को इससे आप्लावित करते हैं। उनका सबसे प्रसिद्ध आख्यान वृत्र वध ही है। उनकी भूमिका महाबली योद्धा की है जो संग्राम में विजयी नेतृत्व करता है किन्तु यह संग्राम आधिभौतिक संग्राम नहीं है जोकि खेत और गोधन के लिए लड़ा जाता था बल्कि मूलतः यह आध्यात्मिक स्तर पर ज्योति और तम का संग्राम है।

वृत्र का अर्थ है ढकने वाला। यह आवश्यक तत्व ही तम या अज्ञान है जिसे वृत्र कहा गया है। ऋग्वेद में जो आख्यान मिलता है उसके अनुसार वृत्र ने सब गायों को हॉक कर एक गुफा में छिया दिया। इन्द्र ने वज्र से वृत्र का वध कर गायों को छुड़ा लिया। वृत्र ने उर्वरता अथवा सृष्टि के मूलभूत रस का शोषण किया और इन्द्र ने हृदय-गुहा को बन्द करने वाली शिला की तरह कठोरता को वज्र से भंग किया जिससे फिर से रस का (जल का) संचार हो सके।[3] इसी घटना को कहा गया है कि इन्द्र ने सात नदियों को बहाया। बादलों को चट्टान व बिजली को वज्र कहा गया है जिसकी कड़क से मेघाद्रि के करने पर वर्षा होती है।

इस प्रकार वृत्र का आख्यान आधिभौतिक स्तर पर सूखे या अकाल को समाप्त करने का द्योतक है। साथ ही गोधन के लिए संघर्ष भी सूचित करता है। आधिदैविक स्तर पर हृदय की कठोरता से मुक्त होकर रस के संचार का प्रतीक है। वहीं आध्यात्मिक स्तर पर विवेक-रूपी वज्र से अन्धकार के नष्ट होने पर ज्ञान का उदय होता है।

हे इन्द्र, जो राक्षस यज्ञ की हव्य-सामग्रियों को खा जाते थे, उन प्रपंचियों को तुमने दूर हटाया। तुमने पिप्रु नामक राक्षस का गढ़ तोड़कर युद्ध में राक्षसों का नाश किया तथा ऋजिश्वा नामक ऋषि की रक्षा की।[4] तुमने कुत्स ऋषि की रक्षा में शुष्ण असुर को, अतिथित्व ऋषि की रक्षा में शंबरासुर को मारा और महान असुर अर्बुद को पैरों से कुचल दिया। तुम राक्षसों का नाश करने को ही उत्पन्न हुए हो।[5]

इस तरह इन्द्र विषयक विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक दृष्टि से इन्द्र परमात्मा थे, आधिदैविक दृष्टि से श्रेष्ठ देव थे और आधिभौतिक दृष्टि से महान् योद्धा थे।

ऋग्वेद (2.12.1) में जो इन्द्र का रूप चित्रित है, उसके अनुसार आधिदैविक स्तर पर इन्द्र सृष्टि की अधिष्ठात्री शक्तियों में व्याप्त परम शक्ति है। आधिभौतिक स्तर पर वह क्षत्र का अधिपति, क्षत्रिय या शासक है। आध्यात्मिक स्तर पर वह मन की संकल्प शक्ति है।

लौकिक और अलौकिक कार्यों के सम्पादन में अग्नि की आवश्यकता थी क्योंकि समस्त याज्ञिक कार्य अग्नि के माध्यम से सम्पन्न होते थे। इसलिए उसे पुरोहित, होता और यज्ञिय भी कहा गया है। वह आहुतियों का स्वामी और धर्मों का प्रधान था। उसी के माध्यम से देवताओं तक हवि (आहुति) पहुंचकर सुख प्रदान करती थी।[6] इन्द्र, मरूत् और वरूण जैसे देवताओं को अग्नि में समर्पित हृवि द्वारा ही होता बुलाता था और उनकी आराधना करता था। अग्नि को चर-अचर का ज्ञाता होने के

कारण उसे 'जातवेदस्' भी कहा गया है तथा सूर्य की तरह सर्व द्रष्टा होने के कारण उसे 'भुवनचक्षु' भी कहा गया है। यद्यपि सूर्य भी अग्नि का ही रूप था।[7] अग्नि के किसी कार्य में अनैतिकता, उच्छृंखलता अथवा अव्यवस्था नहीं थी। अतः उन्हें ऋतुगोपा की संज्ञा दी गयी थी। वह दानवों, पिशाचों, मायावियों का विनाश करने वाला था। इस तरह वह मानवों का मित्र, सहायक और रक्षक था। वह राक्षसों का वध करके जगत् की रक्षा करता था।[8] वह प्राणियों का सहायक और सहयोगी था, इसीलिए उसे पिता, बंधु और मित्र के रूप में सम्बोधित किया गया है।[9] व्यावहारिक रूप में अग्नि के महत्व को अनुभूत करके समाज में उसकी प्रतिष्ठा हुई तथा 'दमूनाः' और 'गृहपति' विशेषण से महिमा मंडन किया गया।

अग्नि के अनेक जन्म बताये गए हैं। अन्तरिक्ष में मेघों की टकराहट (जल से) तथा पृथ्वी पर अरणियों (लकड़ियों) के घर्षण से। चूँकि वर्षा से ही पेड़ उगते हैं, इसलिए उनका पार्थिव जन्म अन्ततः जल से भी होता है। सूर्य की ज्योति के रूप में अग्नि नित्य आकाश में स्थित है परन्तु पृथ्वी पर स्वतः प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान नहीं है (छिपे हुए हैं) । अतः उन्हें प्रकट करने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है अर्थात् घर्षण से उत्पन्न करना पड़ता है। इसीलिए यह आख्यान प्रचलित है कि अग्नि एक बार देवों से भाग कर जल में छिप गये, तत्पश्चात् देव कार्य हेतु उन्हें प्रसन्न करके निकाला गया। तीनों लोकों से सम्बद्ध होने के कारण अग्नि को ''त्रिशधस्थ' भी कहा गया है। उनके जन्म की कथा में एक आधिदैविक सत्य है जो अन्तरिक्ष में प्रत्यक्ष दिखता है। मानव द्वारा अग्नि का सुलगाया जाना एक आधिभौतिक प्रक्रिया है। अर्थात् आधिभौतिक अरणिघर्षण, आधिदैविक विद्युत की अभिव्यक्ति और सूर्य की ऊर्जा इन सबमें समान रूप से व्याप्त आध्यात्मिक तथ्व का संकेत देखने से ही उनमें देवत्व की प्रतीति होती है। यह भी उल्लेखनीय है कि अन्तरिक्ष में जल से सवंद्धित होने पर भी भूलोक में वे एक विपरीत परिस्थिति में (जल सुखाने पर ही) प्रकट होते हैं। अग्नि आध्यात्मिक भूमि में ज्ञान से अभिन्न है। ज्ञान रूप आत्मदेव के प्रकटीकरण हेतु ध्यानात्मक निमन्थन आवश्यक है। शास्त्रों में उल्लिखित प्रतिदिन अग्नि प्रज्जवलित करना अभ्यास के द्वारा उपासना और ज्ञान को प्रज्जवलित करने का द्योतक है। आधिभौतिक अग्नि आध्यात्मिक अग्नि का प्रतीक है तथा आधिदैविक अग्नि का पार्थिव रूप है।

ऋग्वेद में वरूण का चित्रण एक महान देवता के रूप में किया गया है यद्यपि इनकी स्तुति स्वतंत्र रूप से एक दर्जन सूक्तों में ही किया गया है जबकि मित्र के साथ दो दर्जन सूक्तों में स्तुति मिलती है। कम सूक्त समर्पित करने के बाद भी उन्हें सर्वत्र सर्वोपरि विराजमान सम्राट के रूप में दर्शाया गया है। वे सर्वोत्तम राजसत्ता-क्षत्र से समन्वित हैं। वे सभी के कर्मों का (पाप-पुण्य) का लेखा-जोखा रखते हैं, अवलोकन करते हैं। यह कार्य वे सहस्रों निरीक्षक द्वारा उपलब्ध कराई गई सूचना के आधार पर करते हैं। निरीक्षक से संभवतः रात्रिकालीन तारे ही यहाँ अभिप्रेत हैं। वरूण ऋत के रक्षक हैं। अतः उन्हें ऋतावन, ऋतस्य गोपा, धृतवत कहा गया है। उनकी शक्ति अपार है, वे सर्वसाक्षी हैं तथा विश्व के नैतिक नियामक हैं। सूर्य के दो रूप-दिवा-कालीन तथा रात्रिकालीन, मित्र और वरूण के रूप में देखे जा सकते हैं। पश्चिम में सूर्यास्त होने के कारण वरूण का सम्बन्ध समुद्र से अभिहित हुआ वहीं रात्रि से सम्बन्ध होने के कारण वे पाप-पुण्य के साक्षी और दण्ड पाशधर हैं। वरूण का सम्बन्ध आप (जल) से भी स्थापित किया गया है। इसी कारण कालान्तर में वे जल-देवता मात्र ही रह गए। उन्हें जल से उसी प्रकार संयोजित किया गया जिस प्रकार सोम को पर्वतों से।

इस प्रकार आधिभौतिक स्तर पर मित्र तथा वरूण ब्रह्म-क्षत्रात्मक शक्तियों के द्योतक हैं। (मित्र पुरोहित और वरूण राजा के द्योतक हैं)। आधिदैविक स्तर पर मित्र व वरूण सूर्य के ही दो रूप हैं, जो मनुष्य को प्रकाश देते हैं और पाप से बचाते हैं, अहं से मुक्ति प्रदान करते हैं। आध्यात्मिक स्तर पर वे अन्तर्यामी विवेक और धर्माध्यक्ष के रूप में ई-वर को ही द्योतित करते हैं।

''सोम'' आर्यों का अत्यन्त प्रिय पेय था, जिसे कालान्तर में देवता की संज्ञा दे दी गई और वह वैदिक आर्यों के आनन्द और प्रफुल्लता का देवता बन गया। सोमरस से आर्यों को स्फूर्ति, आह्लाद, शक्ति, प्रेरणा एवं रागात्मक वृत्ति प्राप्त होता था। ऋग्वेद का समस्त नवम मंडल और कुल एक सौ बीस सूक्त सिर्फ सोम की स्तुति में समर्पित हैं। अपने आधिभौतिक रूप में सोम एक औषधि था जिसका रस यज्ञ में देवताओं को दिया जाता था। आधिदैविक रूप में उन्हें चन्द्रमा से सम्पृक्त किया गया है। आध्यात्मिक स्तर पर सोम रस या आनन्द ही हैं। सोम रस का रंग भूरा और प्रभाव प्रहर्षक होता था। सोम का उद्गम मूर्जवन्त पर्वत श्रेणी में माना जाता है।

इन्द्र, अग्नि और सोम के बाद सबसे अधिक सूक्तों में अश्विन् देवों का स्तवन मिलता है। ये वैदिक आकाशीय देवता हैं और दो भाई हैं। इनका ऊषा से समीपी सम्बन्ध है क्योंकि तीनों का उदय एक साथ ही प्रातःकाल होता है। निश्चय ही यह दिन-रात्रि का सन्धिकाल है। साथ-साथ उदय से उषा एवं अश्विनौं भाइयों में प्रेम का आरोपण किया गया है।[10] उन्हें ''दस्त्र'' रूद्रवर्तनि और ''हिरण्यवर्तनी'' कहा गया है। मधु के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनका रथ विचित्र है। सूर्य की पुत्री तीन बैठकों एवं तीन पहियों से युक्त अश्विनौ के रथ में सवार होती है।[11] जो अत्यन्त वेगवान है।

इनका दूसरा पक्ष है दुःख से मुक्ति देना एवं आश्चर्यजनक कार्य करना। वे विपत्ति में सहायता करते हैं। वे देवताओं के चिकित्सक हैं। भुज्यु को डूबने से बचाया, ऋज्राश्व को उन्होंने दृष्टिदान दिया, विश्पला को लोहे का पैर दिया, घोषा को पति प्रदान किया। अथर्वा के पुत्र दध्यंच पर अश्व का सिर लगाया इनके दुःख से मुक्ति देने के चार उदाहरण[12] में मिलता है। उन्होंने बूढ़े महर्षि च्यवन को युवक बना दिया, उनके जीवन को बढ़ा दिया तथा उन्हें अनेक कुमारियों का पति होने में समर्थ बनाया। इन्होंने जलते हुए अग्निकुण्ड से अत्रि का उद्धार किया। एक बार गौतम ऋषि रेगिस्तान में प्यास से व्याकुल थे। अश्विनों ने वहॉ कुंआ की जलधारा लाकर उनकी प्यास बुझाई।[13]

यद्यपि सूर्य या उषा के समान उनका भौतिक रूप साफ नहीं उभरा है फिर भी वे उषा एवं दिन के अग्रदूत हैं। आधि-भौतिक स्तर पर अश्विनी कुमार सामुद्रिक विपत्तियों से तारक एवं कुशल चिकित्सक हैं। आधिदैविक स्तर पर वे भोर और सांझ के तारों का युग्म प्रतीत होते हैं। आध्यात्मिक स्तर पर साधना की मधुमति भूमिका में चित्रित हैं।

मरूद्गण (मरूतों) का अकेले ही तैंतीस सूक्तों में स्तवन किया गया है। साथ ही सात सूक्तों में इन्द्र के साथ एवं एक-एक सूक्त में अग्नि और पूशन् के साथ। इन्हें रूद्र का पुत्र या रूद्रगण बताया गया है। मरूत् मध्यमलोक का एक विशिष्ट देव-समूह है। अन्तरिक्ष के प्राकृतिक व्यापारों में, बादलों के वेग और गर्जन में बिजली की कड़क में वर्षा आदि में उनकी शक्ति प्रकट होती है। यही उनका आधिदैविक रूप है। आधिभौतिक स्तर पर उन्हें युवा शक्ति का प्रतीक कहा जा सकता है। आध्यात्मिक स्तर पर उन्हें इन्द्रियों की शक्ति माना जा सकता है। मरूतों के रूप की कल्पना अलंकारिक है। वे देव शक्ति का एक प्रभेद है। फिर भी यदि इन्द्र आत्मशक्ति है तो मरूत् का मनः प्राणात्मक शक्तियॉ माना जा सकता है।

सविता का ऋग्वेद में ग्यारह सूक्तों में पृथक रूप से स्तवन मिलता है। वे सूर्य के ही एक भेद हैं। वेद की सब से प्रसिद्ध ऋचा गायत्री (सावित्री) मन्त्र है और उसके देवता सविता हैं। वे सूर्य का वह रूप है जिसमें वे जगत् को प्रेरित करते हैं। विशेषतया सन्ध्या काल में, प्रातः-सन्ध्या में कर्म की ओर, सायं-सन्ध्या में विश्राम की ओर। आध्यात्मिक स्तर पर वे बुद्धि के प्रेरक हैं (इसी रूप में उनका गायत्री मंत्र में ध्यान किया जाता है) आधिदैविक स्तर पर सविता सन्ध्याकालीन सौर तेज से अभिन्न है। उनका एक रूप वह है जब अभी सूर्योदय नहीं हुआ है, पर अंधेरा हट गया है और दूसरा रूप उनका सूर्यास्त के पश्चात् उपसंहृत होता प्रकाश है। आधिभौतिक स्तर पर सविता सुमति (कार्यों में शुभ प्रेरणा) हैं।

पूषा (पूषन) का अर्थ है पोषक एवं पोषण करने वाला। यास्कमुनि ने निरूक्त में पूषन को आदित्य अर्थात् सूर्य माना है और उसकी पुष्टि में ऋग्वेद के दो मंत्रों (6.58.1) एवं (6.49.8) का उदाहरण दिया है। आधिभौतिक स्तर पर वे मवेशियों के रक्षक हैं, पथों के निर्माता एवं ज्ञाता हैं। चरवाहों एवं यात्रियों के निर्देशक और रक्षक हैं। आधिदैविक स्तर पर वे सूर्य की पोषक ऊर्जा और दूर तक मार्ग दिखाने की शक्ति हैं। आध्यात्मिक स्तर पर आत्मशक्ति के अधीन अर्थ साधक प्रज्ञा हैं। इसी प्रकार कई अन्य महत्वपूर्ण वैदिक देवताओं का उल्लेख स्थान संकोच के कारण कर पाना सम्भव नहीं हो पा रहा है।

वैदिक समाज में व्यावहारिक और आध्यात्मिक आधार पर वैदिक धर्म को आभासित किया गया है। आख्या, श्रद्धा एवं अनुभूति से आधिदैविक एवं आध्यात्मिक सत्ता के स्वरूप की व्यंजना होती है तथा प्रत्यक्ष दर्शन और कार्य से व्यावहारिक या आधिभौतिक स्वरूप की। वैदिक चिन्तन जगत् और जीवन के वैविध्य और दुर्गम्यता को उजागर करता है तथा नवीन दार्शनिक आयाम प्रदान करता है। वैदिक आर्य प्राकृतिक वस्तुओं को आश्चर्यचकित होकर अत्यंत स्नेह और आनन्दपूर्वक देखते थे। प्रकृति की इन विविधताओं में अनेकानेक देवताओं की कल्पना कर उनके अनुग्रह से विश्व के कार्य-कलाप के संचालन की मान्यता स्वीकार की। वस्तुतः प्रकृति के शक्ति को देवता ही नियंत्रित करते हैं। वे सभी यज्ञ के द्वारा उपास्य हैं। उनके परस्पर सम्बन्ध अनेक प्रकार के माने जा सकते हैं। यद्यपि वे एक ही अनन्त ज्योतिर्मय सत्ता के औपाधिक भेद हैं। परन्तु दृष्टा ऋषियों के भाव के अनुरूप उनके नाम-रूप सम्बन्धी भेद इंगित होते हैं जिनके विवरण ऋषियों के सूक्तों में मिलते हैं।

ऋग्वेद के बहुदेवतावादी धर्म की परिणति दशम मण्डल के उन सूक्तों में हुई है, जिनमें विश्व की मूलभूत एकता के प्रतिपादक एकेश्वरवाद का निरूपण किया गया है उसे सृष्टि का विराट् पुरूष बताया गया है। उस एकमेव ब्रह्म तत्व (एकं सत्) को ही ज्ञानियों ने विभिन्न नामों (एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति) से पुकारा है। अतः वैदिकों के इस देवतावाद ने एक ऐसी उदात्त संस्कृति को जन्म दिया, जिसमें देश-काल की परिधियॉं विच्छिन्न होकर अविरत, अविच्छिन्न तथा सार्वभौमिक भावधारा के रूप में सृजित हुई हैं जिसे ऋग्वेद में सत्य, ज्ञान, अनन्त, एकमेव, शान्तिमय और आनन्दमय कहा गया है।

संदर्भ

[1]ऋग्वेद, 1.20.10 (इदं वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरूत्तमम्।)

[2]*वैदिक माइथोलोजी* -प्रो0 मैकडॉनल (हिंदी अनुवाद) वैदिक देवशास्त्र, पृष्ठ 127, (अनुवादक) डॉ0 सूर्यकान्त।

[3]*ऋ0,* 1.32.11

[4]*ऋ0,* 1.51.5

[5]*ऋ0,* 1.51.6

[6]*ऋ0,* 7.11.4; 8.43.40; 2.1.14; 1.26.6; 10.70.11

[7]*ऋ0,* 3.12.3; 1.89

[8]*ऋ0,* 10.87. 1-3, 16, 19

[9]*ऋ0,* 10.1

[10]*ऋ0,* 1.180.2

[11]*ऋ0,* 1.24.5

[12]*ऋग्वेद,* 7.71.5

[13]*ऋ0,* 1.116.8-9

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,19-25
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 30 सितम्बर 2016

काव्य प्रकाश की रचना, कारिका और वृत्ति ग्रंथ के कर्ताओं पर अनुशीलन एवं उनका भेद-अभेद साथ ही मंगलाचरण की विषद् व्याख्या

डॉ. मनीषा शुक्ला*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *काव्य प्रकाश की रचना, कारिका और वृत्ति ग्रंथ के कर्ताओं पर अनुशीलन एवं उनका भेद-अभेद साथ ही मंगलाचरण की विषद् व्याख्या* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मनीषा शुक्ला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

प्राचीन काल से ही यह परम्परा चली आ रही थी कि जब भी हम सनातन धर्म वाले जब भी कोई शुभकार्य करते हैं तो सर्वप्रथम उस कार्य के कुशलतापूर्वक सम्पादन के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते थे। आखिर काव्य और ग्रंथ इससे अछूते कैसे रह जाये। श्री मम्मट ने काव्य प्रकाश के आरम्भ में ईश्वर की उपासना करते हुये यह मंगलार्थक श्लोक लिखा है।

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्। नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।।१।।

नियतिशक्त्या नियतरूपा सुखदुःखमोहस्वभावा परमाण्वाद्युपादानकर्मादिसहकारिकारणपरतन्त्रा षड्रसा, न च हृद्यैव तैः, तादृशी ब्रह्मणो निर्मितिर्निर्माणम् । एतद्विलक्षणा तु कविवाङ्निर्मितः। अत एव जयति। जयत्यर्थेन च नमस्कार आक्षिप्यत इति तां प्रत्यस्मि प्रणत इति लभ्यते।।१।।

ग्रन्थकार

काव्य प्रकाश में कवि एवं व्याख्याकार मम्मट ने एक ऐसी भारती अथवा वाणी की उपासना की है जो नियति के नियमों रहित है, प्रसन्नता प्रदान करने वाली है नवरसों से युक्त है।

'काव्यप्रकाश' श्रीमम्मटाचार्य की सर्वोत्तम कृति है। साहित्यशास्त्र में इस ग्रन्थ ने और इसके द्वारा इसके निर्माता श्रीमम्मटाचार्य ने विपुल ख्याति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त की है। परन्तु इस ग्रन्थ की रचना में केवल मम्मटाचार्य का ही हाथ

* पूर्व-शोध छात्रा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं प्रधान सम्पादिका, अन्वीक्षिकी शोध समग्र पत्रिका, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

नहीं है अपितु उसके अन्तिम भाग का निर्माण दूसरे कश्मीरी विद्वान् श्री 'अल्लटसूरि' के हाथों हुआ है। ऐसा जान पड़ता है कि मम्मटाचार्य अपने जीवनकाल में 'काव्यप्रकाश' को पूरा नहीं कर सके थे। वे दशम उल्लास का 'परिकर-अलंङ्कार' तक का भाग ही लिख पाये थे कि बीच में ही सब-कुछ छोड़कर स्वर्ग-धाम सिधार गये। उनके पीछे उनके मित्र श्री 'अल्लटसूरि' ने शेष भाग की रचना कर ग्रन्थ को पूर्ण किया। इस प्रकार इस ग्रन्थ की रचना दो विद्वानों के प्रयत्न से हुई है यह बात ग्रन्थ के अन्तिम उपसंहारात्मक श्लोक से भी प्रतीत होती है, पर उससे भी अधिक स्पष्ट ह्रप से उसका वर्णन निम्नलिखित दो प्राचीन श्लोकों में पाया जाता है- *कृतः श्रीमम्मटाचार्यवर्यैः परिकरावधिः। प्रबन्धः पूरितः शेषं विधायाल्लटसूरिणा।।*[१]

इस श्लोक में स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादन किया गया है कि मम्मटाचार्य ने केवल 'परिकर अलङ्कार' पर्यन्त 'काव्य प्रकाश' की रचना की थी। उनके बाद श्री अल्लटसूरि ने शेष भाग की रचनाकर के ग्रन्थ को पूर्ण किया। दूसरा श्लोक निम्नलिखित प्रकार है।

काव्यप्रकाश इह कोऽपि निबन्धकृद्भ्यां/ द्वाभ्यां कृतेऽपि कृतिनां रसवत्त्वलाभः। लोकेऽस्ति विश्रुतमिदं नितरां रसालं/ [२]रन्ध्रप्रकाररचितस्य तरोः फलं यत् ।।

इसका अभिप्राय यह है कि जैसे रन्ध्र-प्रकार या बन्ध-प्रकार अर्थात् कलम लगाने की शैली से लगाये गये कलमी आम का फल संसार में अधिक स्वादिष्ट रूप से प्रसिद्ध है उसी प्रकार 'मम्मट' तथा 'अल्लट' दो विद्वानों द्वारा बनाये गये इस 'काव्यप्रकाश' ग्रन्थ में भी सहृदय विद्वानों को विशेष आनन्द मिलता है।[३] कहने को तो यह अत्यन्त सहज सी बात है किन्तु यह कितना रोचक प्रसंङ्ग है, ऐसा आज हो पाना मुश्किल है।

कारिका तथा वृत्ति-ग्रन्थ के कर्ता का अभेद

रचना-शैली की दृष्टि से भी 'काव्यप्रकाश' में दो भाग पाये जाते हैं- एक कारिका भाग और दूसरा वृत्तिभाग। यहाँ 'ग्रन्थकृत् परामृशति' ये जो शब्द आये हैं उनके आधार पर कुछ विद्वानों का विचार है कि इन दोनों भागों की रचना अलग- अलग व्यक्तियों ने की है। ये लोग कारिक भाग का रचयिता 'भरतमुनि' को मानते हैं और मम्मटाचार्य को केवल उन कारिकाओं पर वृत्ति लिखने वाला मानते हैं। अपने मत के समर्थन में वे निम्नलिखित युक्तियाँ देते हैं[४] :

१- 'ग्रन्थकृत् परामृशति' इस वाक्य में प्रथम-पुरुष के प्रयोग द्वारा वृत्तिकार अपने से भिन्न किसी अन्य ग्रन्थकार का निर्देश कर रहे हैं। इससे प्रतीत होता है कि जिन कारिकाओं की व्याख्या 'मम्मटाचार्य' करने जा रहे हैं उनका निर्माता उनसे भिन्न है। इसलिए ये कारिकाएँ 'भरतमुनि' की बनायी हुई हैं और मम्मटाचार्य केवल उन पर वृत्ति का ही निर्माण कर रहे हैं। इस विषय पर और भी गूढ़तम विमर्श की आवश्यकता है।

इस सिद्धान्त के मानने वाले दूसरी युक्ति यह देते हैं कि रूपक के निर्माण के प्रसङ्ग में- [५]*समस्तवस्तुविषयं श्रौता आरोपिता यदा। 'आरोपिताः' इति बहुवचनमविवक्षितम् ।*

यह पाङ्ग मिलता है। इसमें ऊपर की पंक्ति कारिका भाग की है और नीचे की पंक्ति वृत्ति भाग की है। कारिका कार ने 'श्रौता आरोपिताः' इन पदों में बहुवचन का प्रयोग किया है, परन्तु उसकी व्याख्या में वृत्तिकार उस बहुवचन को अविवक्षित बतलाते हैं। यदि वृत्तिकार मम्मट ही कारिका के भी निर्माता होते हो कारिका में स्वयं ही बहुवचन के स्थान पर एक वचन का प्रयोग कर सकते थे। उस दशा में उसकी व्याख्या में 'बहुवचनमविवक्षितम्' लिखने की आवश्यकता ही न होती। परन्तु वास्तव में कारिका उनकी लिखी नहीं है इसलिए मूल-भरतमुनि की कारिका-में बहुवचन रखकर उसकी वृत्ति में उनको 'बहुवचनम् अविवक्षितम्' लिखना पड़ा।[६]

मुख्य रूप से इन दो युक्तियों के आधार पर ही कुछ विद्वान् 'काव्यप्रकाश' के कारिका भाग को भरतमुनिकृत मानकर मम्मटाचार्य को केवल वृत्तिभाग का निर्माता सिद्ध करना चाहते हैं। परन्तु उनका यह पक्ष ठीक है कि मम्मटाचार्य ने दो-तीन स्थलों पर भरतमुनि की कारिकाएँ भी दी हैं। परन्तु उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। 'काव्यप्रकाश' की १४२ कारिकाओं में केवल दो-तीन कारिकाएँ भरतमुनि की उद्धृत की गयी है, शेष सब कारिकाएँ मम्मटाचार्य की स्वयं बनायी

हुई ही है। ग्रन्थकार जब अपनी बनायी हुई कारिकाओं पर स्वयं वृत्ति लिखने बैङ्गता है तो वह अपने को कारिकाकार से भिन्न-सा मानकर 'ग्रन्थकृत् परामृशति' आदि प्रथम-पुरुष का प्रयोग करता है और स्वरचित कारिका की व्याख्या में स्वयं ही 'बहुवचनमविवक्षितम्' आदि भी लिख सकता है। इस प्रकार का व्यवहार न केवल 'काव्य-प्रकाश' में अपितु अन्य अनेक ग्रन्थों में भी पाया जाता है। मम्मटाचार्य के अतिरित आनन्दवर्धन, कुन्तक, मुकुलभट्ट, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने भी इस पद्धति का अवलम्बन किया है। इन सभी ने स्वयं कारिका ह्रप में अपने ग्रन्थों की रचना कर उन पर स्वयं ही वृत्ति की रचना की है। इसी प्रकार मम्मटाचार्य ने भी अपनी लिखी कारिकाओं पर स्वयं ही वृत्ति लिखकर 'काव्यप्रकाश' की रचना की है यह मानना ही उचित है।[७]

इसके अतिरिक्त चतुर्थ उल्लास में जहाँ मम्मटाचार्य ने रस का निरूपण किया है वहाँ [८]'उक्तं हि भरतेन' लिखकर विशेषतः प्रमाण रूप से भरत मुनि का उल्लेख किया है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि केवल वह अंश भरत मुनि का है। अन्य सब कारिका भाग स्वयं मम्मटाचार्य का ही है। इसी प्रकार दशम् उल्लास में रूपकालङ्कार के निरूपण में 'माला तु पूर्ववत्' यह कारिका का भाग आया है। परन्तु इसके पूर्व किसी कारिका में 'माला' का वर्णन नहीं आया है। हाँ, उपमालङ्कार के प्रसङ्ग में वृत्ति भाग में 'एकस्यैव बहूपमानोपादाने मालोपमा' यह पंक्ति अवश्य आयी है। 'मालारूपक' वाली कारिका में वृत्ति भाग के इसी अंश की ओर सङ्केत किया गया है। यदि कारिकाएँ भरतमुनि की होतीं तो इस वृत्ति भाग का सङ्केत उसमें कैसे हो सकता था। इसलिए भी 'काव्यप्रकाश' के कारिका भाग तथा वृत्ति भाग दोनों मम्मटाचार्य के बनाये हुए हैं यही बात मानना उचित एवं अधिक युक्तिसंगत है।[९]

साहित्य-मीमांसा का विवेचन

हमने अपनी बनायी 'साहित्य-मीमांसा' नामक कारिका-रूप में लिखी हुई अन्य पुस्तक में इस विषय का विवेचन किया है।[१०-१३]

इस प्रकार श्रीमम्मटाचार्य ने अपनी बनायी हुई कारिकाओं की ही व्याख्या स्वयं लिखकर अपने इस ग्रन्थ की यह बात बिल्कुल निश्चित है।

ग्रन्थ का लक्षण

'पञ्चाङ्गकं वाक्यं ग्रन्थः' अर्थात् पाँच अवयवों से युक्त वाक्य को ग्रन्थ कहते हैं। वस्तुतः उन पाँच अङ्गों को ही दूसरी जगह 'पञ्चाधिकरण' नाम से कहा गया है- *विषयो विषयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्। निर्णयश्चेति पञ्चाङ्गं शास्त्रेऽधिकरणं विदुः।।* अर्थात् (१) विषय, (२) उसके सम्बन्ध में विषय अर्थात् संशय, (३) पूर्वपक्ष, (४) उत्तरपक्ष आदि दिखला कर अन्त में किसी (५) निर्णय को प्राप्त करना यह पाँच अङ्ग शास्त्र में 'अधिकरण' माने गये हैं, वे ही पाँचों ग्रन्थों के भी अङ्ग हैं। उन पाँचों अङ्गों से युक्त महावाक्य 'ग्रन्थ' कहलाता है। 'काव्यप्रकाश' में भी अनेक विषयों में पूर्व पक्ष आदि का निराकरण करके निर्णय या सिद्धान्त स्थिर किये गये हैं इसलिए यह भी ग्रन्थ कहा जाता है। अन्य विद्वानों ने 'सम्बन्धप्रयोजनज्ञानाहितशुश्रूषाजन्यश्रुतिविषयशब्दसन्दर्भो ग्रन्थः' यह ग्रन्थ का लक्षण किया है।[१४]

मङ्गलाचरण

मूर्धन्य विद्वान मम्मट के पूर्व से चली आई परम्परा कि काव्य अथवा ग्रंथ अथवा किसी भी वृहद् श्रेष्ठा कार्य के आरम्भ के पूर्व ईश्वर की उपासना करनी चाहिये, एक प्रकार के मंगल की कामना करनी चाहिये, इसका निर्वहन काव्य प्रकाश के प्रारम्भ में मम्मट ने किया है।

प्रत्येक शुभकार्य के प्रारम्भ में भगवान् का स्मरण करना सभी आस्तिकों में समान ह्रप से पाया जाता है। इसलिए ग्रन्थ के आरम्भ में भी किसी-न-किसी रूप में अपने इष्टदेवता का स्मरण किये जाने की परम्परा सारे भारतीय साहित्य

में पायी जाती है। इसको 'मङ्गलाचरण' नाम से कहा जाता है। इस 'मङ्गलाचरण' अथवा भगवान् के नाम का स्मरण करने से कार्य-सिद्धि के मार्ग में आने वाली विघ्नबाधाओं के ऊपर विजय प्राप्त करने की क्षमता प्राप्त होती है। इसलिए विघ्नविधातकों भी 'मङ्गलाचरण' का एक मुख्य प्रयोजन माना जाता है। इसी परम्परा के अनुसार मम्मटाचार्य ने भी अपने ग्रन्थ के आरम्भ में पहिली कारिका मङ्गलाचरण के रूप में लिखी है। 'काव्यप्रकाश' नाम से यह साहित्यशास्त्र के एक मुख्य ग्रन्थ का निर्माण करने जा रहे हैं। इसलिए उन्होंने वाङ्मय की अधिष्टातृ-देवता और उसमें भी विशेषरूप से कवि-भारती का इष्टदेवता के ह्रप में स्मरण करना उचित समझा है। अतएव 'भारती कवेर्जयति' के रूप में उस कवि-भारती का जय-जयकार करते हुए वे लिखते हैं।[१५]

कवि-सृष्टि की विशेषताएँ

एक विशेषता विधाता के सृष्टि में है तो दूसरी विशेषता कवि सृष्टि में है।

ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धनाचार्य ने कवि को स्वयं प्रजापति या ब्रह्मा और काव्य संसार को उसकी सृष्टि कहा है- *अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः। यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।*[१६]

इस अपार काव्य संसार का निर्माता कवि है। उस कवि-प्रजापति की इच्छा और रुचि के अनुसार ही इस काव्य संसार की रचना होती है। यह कहकर आनन्दवर्धनाचार्य ने कवि के असाधारण महत्त्व का प्रतिपादन किया है, पर मम्मटाचार्य उससे भी एक पग आगे बढ़ गये हैं। उन्होंने कवि की सृष्टि को ब्रह्मा की सृष्टि से भी उत्कृष्ट माना है और इस प्रकार कवि की सामर्थ्य को ब्रह्मा के सामर्थ्यों से अधिक महत्त्व प्रदान किया है। अपने इस मङ्गलाचरण में ग्रन्थकार ने अपने इष्ट देवता 'कवि-भारती' को सर्वोत्कर्षशालिनी सिद्ध करने के लिए 'व्यतिरेकालङ्कार' का प्रयोग किया है। उपमान से उपमेय का आधिक्य वर्णन करने पर व्यतिरेकालङ्कार होता है। यहाँ ब्रह्मा की सृष्टिरूप उपमान की अपेक्षा कविभारती की सृष्टि-निर्मिति-के उत्कर्ष का प्रतिपादन कर ग्रन्थकार ने उसके सर्वोत्कर्षशालित्व की स्थापना की है। ब्रह्मा की सृष्टि की अपेक्षा कवि की सृष्टि में काव्य प्रकाशकार ने चार प्रकार की विशेषताओं का उल्लेख इस मङ्गल-श्लोक में किया है। कवि और ब्रह्मा की सृष्टि में कुछ विरोधाभास भी दिखाई पड़ता है। यह विरोधाभास अध्ययन के समय अत्यन्त रोचक प्रतीत होता है। उनको इस प्रकार समझना चाहिये-

१- पहली विशेषता यह है कि ब्रह्मा की सृष्टि 'नियतिकृतनियमसहिता' है, परन्तु कवि की सृष्टि 'नियतिकृतनियमरहिता' है। 'नियति' शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं। 'नियम्यन्ते सौरभादयो धर्मा अनया इति नियतिरसाधारणो धर्मः पद्मत्वादिरूपः' अर्थात् जिसके द्वारा सौरभा आदि धर्मों का नियन्त्रण किया जाता है वे पद्मत्वादिरूप असाधारण धर्म 'नियति' पद से कहे जाते हैं। उसके द्वारा किया गया नियम 'यत्र पद्मत्वं तत्र सौरभविशेषः' जहाँ पद्मत्व होता है वहाँ विशेष प्रकार का सौरभ रहता है इस प्रकार की व्याप्ति को 'नियति-कृत-नियम' कहा जा सकता है। ब्रह्मा की सृष्टि 'नियति-कृत-नियम' से युक्त है। उसमें इस प्रकार की व्याप्ति पायी जाती है कि विशेष प्रकार के सौरभ आदि का विशेष पदार्थों के साथ ही सम्बन्ध होता है, परन्तु कवि की सृष्टि में इस प्रकार का कोई नियम नहीं है। उसकी सृष्टि में स्त्री के मुख में कमल की सुगन्ध, उसकी आँखों में कमल का सौन्दर्य और उसके शरीर में कमल की कोमलता रहती है। उसकी सृष्टि में चन्द्रमा की शीतल चाँदनी और मेघों की मन्दध्वनि से भी विरहिणियों के लिए आग की लपटें निकलती हुई दिखलायी देती है। इसलिए कवि की सृष्टि 'नियतिकृत-नियम-रहिता' है।

'नियति' शब्द का दूसरा अर्थ 'अदृष्ट' या धर्माधर्म' है। ब्रह्मा की सारी सृष्टि 'अदृष्ट के सिद्धान्त पर ही स्थिर है। प्राणियों के पूर्वकृत कर्म या 'अदृष्ट' के फलभोग के लिए ही इस सृष्टि की रचना हुई है और उसी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को सुख-दुःख, स्वर्ग और नरक की प्राप्ति होती है। परन्तु कवि की सृष्टि इन सब बन्धनों से परे है। कवि केवल अपनी कल्पना के सहारे जब चाहता है अपने नायक को या पात्रों को विघ्न-बाधाओं के भयङ्कर संघर्ष में डाल देता है और जब चाहता है तब अतर्कित रूप से मनोवाञ्छित सामग्री से भी अधिक सुख-सामग्री उनके सामने उपस्थित कर देता है। [१७]''स्वर्गप्राप्तिरनेनैव देहेन वरवर्णिनी।'' के अनुसार वह इसी शरीर से मनुष्य

को सदेह स्वर्ग में पहुँचा सकता है। इसलिए कवि-सामर्थ्य ब्रह्मा के सामर्थ्य से कहीं अधिक है। मङ्गलाचरण के श्लोक में 'नियतिकृतनियमरहिताम्' लिखकर मम्मटाचार्य ने कवि-भारती की इसी विशेषता का उल्लेख किया है।[१८]

२- कवि-सृष्टि की दूसरी विशेषता 'ह्लादैकमयत्व' है। ब्रह्मा की सृष्टि में सुख-दुःख दोनों का अस्तित्व है। कोई प्राणी संसार में रहकर दुःख से नहीं बच सकता। सांसारिक सुखों के साथ दुःख का भोग अवश्यम्भावी है। परन्तु कवि की सृष्टि में दुःख का अस्तित्व नहीं है। उसकी सृष्टि में जब हम 'इन्दुमती' के वियोग में 'अज' को विलाप करते हुए सुनते हैं और जब 'उत्तररामचरित' के कवि को सीता वियोग में रोते हुए रामचन्द्र को देखकर [१९]''अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्'' पत्थरों को रुलाते हुए पाते हैं तब उस करुण रस में भी आनन्द का अनुभव का अनुभव करते हैं। उस आनन्दातिरेक से द्रवीभूत होकर नेत्रों से भी अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है। कवि की सृष्टि में रुदन एवं क्रन्दन से भरा हुआ करुण रस भी आनन्दानुभूतिस्वरूप ही है- [२०]*करुणादावपि रसे जायते यत् परं सुखम्। सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम् ।।*

इसलिए कवि की सृष्टि 'ह्लादैकमयी'-केवल सुखमयी-है। 'संख्याः संख्ये ये ह्याद्वादश विषु' 'अमरकोश' के इस वचन के अनुसार द्वादश पर्यन्त संख्या-वाचक शब्द संख्या के अतिरिक्त संख्येय वस्तु के वाचक भी होते हैं। इसलिए यहाँ 'एक' शब्द संख्या का नहीं अपितु संख्येय का वाचक है। उससे [२१]''तत्प्रकृतवचने मयट्' इस सूत्र से मयट्-प्रत्यय होकर 'एकं (वस्तु) प्राचुर्येण प्रस्तुतं यस्यां सा एकमयी' एक वस्तु जिसमें प्रचुरता से प्रस्तुत है वह 'एकमयी' हुई है। 'ह्लादेन एकमयी ह्लादैकमयी' इस प्रकार का समास होकर 'ह्लादैकमयी' यह पद सिद्ध होता है और इसका अर्थ 'आनन्दमात्रपरिच्छिन्नस्वरूपा' होता है। 'ह्लाद' शब्द का 'एक' शब्द के साथ 'कर्मधारय-समास' करके 'ह्लादश्चासौ एकः ह्लादैकः पद बनाकर और उससे 'मयट्-प्रत्यय' करके इस पद को सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये, क्योंकि उस दशा में [२२]''पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' इस सूत्र से 'पूर्वनिपात अनिवार्य होने के कारण 'एकश्चासौ ह्लादः एकह्लादः' यह यह बनेगा। इसलिए इस प्रकार का समास न करे पूर्वोक्त रीति से पहिले संख्ये-वस्तु-वाचक 'एक' शब्द से प्राचुर्यार्थ में अथवा प्रदीपकार के अनुसार स्वार्थ में मयट्-प्रत्यय करके 'एकमयी' शब्द बना लेने के बाद उसका तृतीयान्त 'ह्लाद' शब्द के साथ 'ह्लादेन एकमयी ह्लादैकमयी' इस प्रकार का समास करना ही उचित है, जिसका अर्थ 'आनन्दमात्रस्वभावा' होता है। इससे ब्रह्मा की सृष्टि में सांख्याभिमत सुख-दुःख-मोहस्वभावत्व की अपेक्षा कवि की सृष्टि में आनन्दमात्रस्वभावत्व दिखलाकर ग्रन्थकार ने कवि-सृष्टि के दूसरे उत्कर्ष का प्रतिपादन किया है।

३- कवि की सृष्टि में तीसरी विशेषता मम्मटाचार्य ने 'अनन्य-परतन्त्राम्' इस पद से प्रदर्शित की है। ब्रह्मा की सृष्टि प्रकृति अथवा असमवायि-निमित्तकारण आदि के बिना सम्भव न होने के कारण इनके अधीन है परन्तु कवि की सृष्टि के लिए कवि की अपनी प्रतिभा के अतिरिक्त अन्य किसी सामग्री की आवश्यकता नहीं होती। वह किसी दूसरे के अधीन न होने से 'अनन्यपरतन्त्रा' है। इसीलिए वह ब्रह्मा की सृष्टि की अपेक्षा उत्कर्षशालिनी है।

अनन्य-परतन्त्रा पद में 'परतन्त्र' पद का प्रयोग किया गया है, इसमें परतन्त्र शब्द का अर्थ अधीन है। परतन्त्र का पराधीन अर्थ न करके केवल अधीन अर्थ ही करना चाहिये। क्योंकि 'अनन्यपराधीना' यह अर्थ कुछ सङ्गत-सा नहीं होता है। इसलिए यहाँ 'परतन्त्र' शब्द का केवल 'अधीन' अर्थ ही लेना चाहिये। [२३]*'परतन्त्रः पराधीनः परवान्नाथवानपि। अधीनो विघ्न आयत्तोऽस्वच्छन्दो गृह्यकोऽप्यसौ।।'* 'अमरकोश' के इस वचन के अनुसार 'परतन्त्र' शब्द केवल 'अधीन' अर्थ का वाचक भी माना गया है।

४- ब्रह्मा की सृष्टि की अपेक्षा कवि की सृष्टि में चौथी विशेषता यह दिखलायी है- ब्रह्मा की सृष्टि में मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त केवल ये छः प्रकार के रस पाये जाते हैं। उनमें से सब रस मनुष्यों को प्रिय ही नहीं हैं, कटु-रस अत्यन्त अप्रिय भी है। औषध आदि के रूप में भी उसका सेवन करने से आदमी घबड़ाता है। परन्तु कवि-सृष्टि के रसों में एक विशेषता तो यह है कि उसमें छह रसों के स्थान पर शृङ्गार, वीर, करुण आदि नौ रस होते हैं और जैसा कि अभी कहा जा चुका है, दूसरी विशेषता यह है कि वे सब रस केवल आनन्दमय

ही होते हैं। इसलिए कवि की सृष्टि 'नवरसा' और 'रुचिरा' होने के कारण भी ब्रह्मा की सृष्टि की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है यह ग्रन्थकार का अभिप्राय है।

'नवरस' पद में 'नवानां रसानां समाहारः' इस प्रकार का समास नहीं करना चाहिये, क्योंकि उस दशा में 'श्रकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' इस महाभाष्य के वचन के अनुसार त्रिलोकी, पञ्चमूली आदि के समान 'नवरसी' इस प्रकार का प्रयोग प्राप्त होगा। इसलिए 'समाहार द्विगु-समास' न करके 'नवसंख्याका रसा यस्यां सा नवरसा' इस प्रकार का 'बहुव्रीहिसमास' करने के बाद फिर 'नवरसा चासौ रुचिरा चेति नवरसरुचिरा' यह 'कर्मधारयसमास' करके इस पद को बनाना चाहिये। अथवा 'नवावयवश्चासौ रसश्च' इस विग्रह में 'शाकपार्थिवत्वात्' मध्यमपदलोपी कर्मधारय-समास करके 'नवरसा' पद बनाने के बाद उसका 'रुचिरा' पद के साथ फिर कर्मधारयसमास किया जा सकता है।

इस प्रकार ब्रह्मा की सृष्टि की अपेक्षा कवि-भारती की रचना में चार महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ पायी जाती हैं। ब्रह्मा की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्ट सृष्टि की रचना करने वाली कवि-भारती 'जयति' अर्थात् सर्वोत्कर्षशालिनी है, यह लिखकर मम्मटाचार्य ने अपने ग्रन्थ के आरम्भ में कवि-भारती की जय-जय-कार किया है और उसके द्वारा कवि-भारती के प्रति अपनी सम्मान-भावना द्वारा नमस्कार भी सूचित किया है।

मङ्गलाचरण के इस श्लोक में 'आर्या' छन्द के 'गीति' नामक भेद का लक्षण पाया जाता है। आर्या छन्द का लक्षण कालिदास ने 'श्रुतबोध' में इस प्रकार किया है- [२४]*यस्याः प्रथमे पादे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या।।*

संस्कृत के इस 'आर्या' छन्द को ही प्राकृत में 'गाथा' नाम से कहा जाता है। इसी छन्द में संस्कृत की 'आर्या-सप्तशती' तथा प्राकृत की 'गाथा-सप्तशती' की रचना हुई है। 'प्राकृत-पिङ्गल' के आचार्य पिङ्गलनाग ने गाथा का लक्षण इस प्रकार किया है- [२५]*पढमं बारह सत्ता बीए अट्ठारहेहिं संजुता। जह पढमं तह तीअं दहपञ्चबिहूसिआ गाहा।।*

गाथा का यह लक्षण आर्या छन्द के पूर्वोक्त लक्षण से बिल्कुल मिलता-जुलता है। यहाँ मम्मटाचार्य ने अपने मङ्गलाचरण के श्लोक में इसी 'आर्या' छन्द के विशेष भेद 'गीति' का प्रयोग किया है। 'गीति' का लक्षण इस प्रकार किया गया है- [२६]*आर्या प्रथमदलोक्तं कथमपि लक्षणं भवेदुभयोः। दलयोः कृतयतिशोभां तां गीतिं गीतवान् भुजङ्गेशः।।*

इस मङ्गलश्लोक में उपमानभूत ब्रह्मा की सृष्टि की अपेक्षा उपमेय भूत कवि-भारती की सृष्टि में चार प्रकार का आधिक्य दिखलाया गया है इसलिए यहाँ व्यतिरेकाङ्कार का लक्षण 'काव्यप्रकाश' में इस प्रकार किया गया है- [२७]*'उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः'।*

'भारती कवेर्जयति' में कविपद में जो षष्टी का प्रयोग हुआ है वह सम्बन्ध-सामान्य का सूचक है। 'कवेर्भारती' इसके दो अर्थ हो सकते हैं- एक कवि की भारती अर्थात् काव्य, और दूसरी कवि की भारती अर्थात् उसकी आराध्य-देवता सरस्वती। इन दोनों में से पहिले अर्थ में कवि का, काव्य-रूप अपनी भारती के साथ जन्य-जनक-भाव-सम्बन्ध होगा और देवता रूप दूसरे पक्ष में कवि का भारती के साथ आराध्य-आराधक-भाव-सम्बन्ध होगा।

'जयत्यर्थेन नमस्कार आक्षिप्यते' यहाँ 'जयति' का अर्थ उत्कर्षशालिनी होता है। इसलिए 'जयत्यर्थेन' का अर्थ 'उत्कर्षेण' होता है। उससे अपने अपकर्षज्ञानपूर्वक प्रह्वीभावरूप नमस्कार की अभिव्यक्ति होती है। 'वैयाकरण-मञ्जूषा में' 'सुबर्थ' के प्रकरण में 'नमः' शब्द का अर्थ ''अपकृष्टवज्ञानबोधनानुकूलो व्यापारः स्वरादिपटितनमः शब्दार्थः'' इस प्रकार किया है। नमस्कार करने वाला पुरुष नमस्कार्य की अपेक्षा अपने को छोटा समझकर ही नमस्कार करता है। इसलिए नमस्कार्य कविभारती के 'जयति' पद से सूचित उत्कर्ष के द्वारा ग्रन्थकर्ता के नमस्कार या प्रह्वीभाव की सूचना मिलती है। अतएव यहाँ 'जयति' कहने से 'मैं उस कवि-भारती को नमस्कार करता हूँ' यह अर्थ ही प्रतीत होता है, यह ग्रन्थकार का अभिप्राय है।।१।[२८]

स्रोत

[१]*ऋग्वेद,* ९/९२/३

[२]*बन्ध-प्रकार इति पाठान्तरम्*

[३]*काव्य प्रकाश* -आचार्य मम्मट, प्रथम उल्लास ः कारिका-१, पृष्ठ संख्या २

[४]वही, पृष्ठ संख्या २

[५]*काव्य प्रकाश*- आचार्य मम्मट, दशम् उल्लास ः कारिका-९३, सूत्र-१३९

[६]*काव्य प्रकाश* -आचार्य मम्मट, प्रथम उल्लास ः कारिका-१, पृष्ठ संख्या २

[७]*काव्य प्रकाश* -आचार्य मम्मट, प्रथम उल्लास ः कारिका-१, पृष्ठ संख्या ३

[८]सूत्र-४३, कारिका-२७ की व्याख्या

[९]*काव्य प्रकाश* -आचार्य मम्मट, प्रथम उल्लास ः कारिका-१, पृष्ठ संख्या ३

[१०-१३]काव्यप्रकाशनामा च मम्मटाचार्यनिर्मितः। ग्रन्थो लेभे परां ख्यातिं शते तु द्वादशे कृतः।।१।।
''कृतः श्रीमम्मटाचार्यवर्यैः परिकरावधिः। ग्रन्थः सम्पूरितः शेषं विधायाल्लटसूरिणा।।''
कारिका भरस्यात्र वृत्तिर्मम्मटनिर्मिता। य एवं मेनिरे केचिन्मतं तेषामशोभनम् ।।२।।
कारिकाणां शते त्वत्र द्वाचत्वारिंशदुत्तरे। कथं हरेयुः स्वातन्त्र्यं द्वित्रा भरतकारिकाः।।३।।
ग्रन्थारम्भे प्रयोगो यः प्रथमे पुरुमे पुरुषे कृतः। 'परामृशती'ति नूनं सोऽनहङ्कारसूचकः ।।४।।
रूपके कारिकायान्तु बहुवचनं प्रयुज्यते। वृत्तौ तस्य च सम्प्रोक्तं 'बहुत्वमविवक्षितम्।।५।।
तेनापि भिन्नकर्तृत्वमनयोर्न प्रसिद्ध्यति। स्वाभिन्नकर्तृकत्वेऽपि तथा व्याख्यानसम्भवात् ।।६।।
मङ्गलं मूलमात्रे तु वृत्तेरादौ न दृश्यते। एतेनापि तयोरेककर्तृकत्वं सुनिश्चितम् ।।७।।
'तदुक्तं भरतेनेति' वृत्तिस्तुर्ये तु दृश्यते। सर्वाश्चेत् कारिकास्तस्य किमर्थमत्र कीर्तनम् ।।८।।
रूपके कारिकायां हि प्रोक्तं 'माला तु पूर्ववत्'। वृत्तेस्तेन परामर्शान्न कर्तृत्वं विभिद्यते।।९।।
तस्मात् काव्यप्रकाशस्य वृत्तिभागोऽथ कारिकाः। उभयं मम्मटेनैव निर्मितमिति निश्चितम् ।।१०।। (साहित्य-मीमांसा-६, पृष्ठ संख्या ३-४)

[१४]*काव्य प्रकाश* -आचार्य मम्मट, प्रथम उल्लास ः कारिका-१, पृष्ठ संख्या ४

[१५]वही, पृष्ठ संख्या ५

[१६]*ध्वन्यालोक,* पृष्ठ संख्या ४२२

[१७]*काव्य प्रकाश,* अष्टम् उल्लास, उदाहरण सं० ३४७

[१८]*काव्य प्रकाश* -आचार्य मम्मट, प्रथम उल्लास ः कारिका-१, पृष्ठ संख्या ६

[१९]*'उत्तररामचरितम्'* १,२८

[२०]*'साहित्यदर्पण'* ३,४

[२१]*'अष्टाध्यायी'* ५,४,२१

[२२]वही, २,१,४९

[२३]*'अमरकोश'* ३-१-१६

[२४]*श्रुतबोध*

[२५]*प्राकृत-पिङ्गल*

[२६]*वृत्तरत्नाकर,* २-८

[२७]*काव्य प्रकाश,* दशम् उल्लास ः कारिका-१०५, सूत्र-१५८

[२८]*काव्य प्रकाश* -आचार्य मम्मट, प्रथम उल्लास ः कारिका-१, पृष्ठ संख्या ९

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,26-28
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 25 सितम्बर 2016

जगत् की संरचना : विवेकानन्द

डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *जगत् की संरचना : विवेकानन्द* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार अग्निहोत्री* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

जगत संबंधी अनेकों विचारों को प्रकट करने के उपरान्त स्वामी विवेकानन्द जी ने अन्त में समन्वयवादी विचारधारा को अपनाया है और कहा है कि ''जड़, शक्ति, मन, बुद्धि या अन्य दूसरे नामों से परिचित विभिन्न जागतिक शक्तियाँ उस विश्वव्यापी बुद्धि की ही अभिव्यक्ति है। जो कुछ तुम देखते हो, सुनते हो या अनुभव करते हो, सब उसी की सृष्टि है - ठीक कहें, तो उसी का प्रक्षेप है, और भी ठीक कहें, तो सब कुछ स्वयं प्रभु ही है। सूर्य और ताराओं के रूप में वहीं उज्जवल भाव से विराज रहा है, वही धरती माता है, वहीं समुद्र है।....यह समस्त वही है। वह जगत् का उपादान और निमित्त कारण है, क्रम संकुचित होकर वही अणु का रूप धारण करता है, फिर वही क्रम विकसित होकर पुनः ईश्वर बन जाता है। वही धीरे-धीरे अवनत होकर क्षुद्रतम परमाणु हो जाता है, फिर वही धीरे-धीरे अपना स्वरूप प्रकाशित करता हुआ अन्त में पुनः 'अपने' साथ युक्त हो जाता है - बस यही जगत् का रहस्य है।''

स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक विचारों का आधार वेदान्त है और जगत संबंधी उनकी धारणा भी उपनिषद् के मूल विचार से मेल खाती है। परन्तु जगत के स्वरूप का व्याख्या शंकराचार्य के विचार के अधिक समीप है। शंकराचार्य ने जगत् की तुलना एक महार्णव से की है। इनके अनुसार, ''यह अविद्या, कामना और कर्म से उत्पन्न हुए दुःखरूप जल तथा तीव्र रोग, जरा और मृत्यु रूप महाग्रहों से पूर्ण है। यह अनादि, अवन्त, आधार एवं निरालम्ब है। विषय और इन्द्रियों के संयोग से होने वाला अणुमंत्र सुख ही इसकी क्षणिक विश्वान्ति का स्वरूप है। इसमें पाँचों इन्द्रियों की विषय तृष्णारूप पनव के विक्षोभ से उठी हुई अनर्थ रूप सैकड़ों उत्ताल तरंगे है इसमें महारौरव आदि नरकों के 'हा-हा' आदि क्रन्दन और चिल्लाहट से बड़ा कोलाहल मचा हुआ है। इससे सत्य सरलता, दान, दया अहिंसा, शम, दम और धैर्य आदि जीव के गुण रूप, पाथेय से भरी हुई ज्ञान रूपी नौका है। सत्संग और सर्वत्याग ही इसमें नौकाओं के आने-जाने का मार्ग है तथा मोक्ष ही इसका तट है।''

* एस. एस. खन्ना महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : agni.mkumar@yahoo.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

यद्यपि जगत् का यह अलंकारिक वर्णन व्यवस्थित है पर्याप्तपूर्ण नहीं है फिर भी इससे जगत् के विशिष्ट लक्षणों का अच्छा परिचय मिल जाता है। परमार्थ दृष्टि से तो शंकर अद्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म एवं जगत् में अनन्यत्व होने के कारण कार्यकारणता का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। इसीलिए शंकर दर्शन के अनुसार जगत् को ब्रह्म का विवर्त किया गया है, परिणाम नहीं। परन्तु किन्ही-किन्ही स्थानों पर शंकर परिणामवाद के समर्थक भी दिखाई देते है; जैसे - ''जब वे कहते है कि ईश्वर की त्रिगुणात्मक अवरा प्रकृति जीवो के उपभोग और मुक्ति के लिए कार्य करती है। वह अपने को इन सभी कार्यो उपकरणों और वस्तुओं में रूपान्तरित करती है और शरीर तथा इन्द्रिय अवयवों का स्थूल रूप धारण करती है।''

राममूर्ति शर्मा के अनुसार, ''शंकर अद्वैतवादी के अन्तर्गत जगत् को मिथ्या सिद्ध किया गया है। परन्तु अद्वैतदर्शन के अन्तर्गत जगत् आकाशकुसुम के समान अलीक नहीं है, अपितु व्यावहारिक दृष्टि से वह सत् है। अतः अद्वैतवेदान्त में मिथ्यात्व से सद्सद्विलक्षणत्व का ही आश्रय ग्राह्य है। शांकर वेदान्त का वह मिथ्यातव अनिर्वचनीयत्व पर आधारित है।''

वास्तव में, इन्द्रियानुभविक जगत् का स्वरूप एक विशिष्ट प्रकार का है। इसे न तो नितान्त असत् न नितान्त सत् और न केवल मानसिक रचना कहा जा सकता है। इसके स्वरूप का यथार्थ निरूपण करने के लिए हमें इसे नितान्त सत् और नितान्त असत् से भेद करना होगा। 'सत' और असत् शब्द एक दूसरे के विपरीत है। अतः यह कहना संभव नहीं है कि संसार सत् और असत् दोनों है। शंकराचार्य के समान स्वामी विवेकानन्द भी सत्य को परिभाषा करते हुए कहते हैं कि, ''जो देश, काल, और कार्यकरण से अनवच्छिन्न हो यही सत्य है।'' इस दृष्टि से जगत् की सत्य कोटि में गणना नहीं की जा सकती, क्योंकि देशकालादि का समूह ही तो जगत् है। जगत् के मिथ्यात्व के विषय में एक युक्ति देते हुए स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं कि, ''सत्य कभी भी विषयीभूत नहीं हो सकता। जो भी इन्द्रियादि संगृहीत हो रहा है वह सत्य नहीं है। सापेक्ष होने के कारण जगत् भी 'सत' नहीं है। जगत असत् है' इसका तात्पर्य यह है कि जगत् निरपेक्ष अस्तित्व युक्त नहीं है। यह तुम्हारे' मेरे' प्रत्येक के मन पर आश्रित है। यह अपने अस्तित्व के लिए सत् की अपेक्षा रखता है। जगत अज्ञेय है, इसलिए भी असत् है। जगत् का वास्तविक रूप सदैव अज्ञात है। जड़ वस्तु को भी किसी ने नहीं देखा है। हम केवल स्वयं का ही अनुभव कर सकते हैं। ऐसा कोई मनुष्य नहीं है। जिसने स्वयं के बाहर जाकर जड़ का अनुभव किया हो। हम सब वस्तुओं की सत्ता मान लेते हैं इसीलिए हम उन्हें सत् कहते हैं। परन्तु केवल मान लेने से उस वस्तु की गणना 'सत्' कोटि में नहीं की जा सकती। जगत् मस्तिष्क का भ्रम मात्र हो सकता है।''

स्वामी विवेकानन्द जी ने सृष्टि की उत्पत्ति के जिस क्रम को स्वीकार किया है वह संख्या दर्शन के अधिक नजदीक हैं उनके अनुसार समस्त जड़ पदार्थो का मूल उपादान कारण आकाश तत्व है और समस्त शक्तियों का मूल तत्व प्राण है। परन्तु आकाश और प्राण की उत्पत्ति 'महत्' तत्व से हुई है। मन भी जड़ तत्व हैं। अतः अन्तिम तत्व चैतन्य ही है। स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार, ''आजकल हम जिसे जड़ कहते हैं, उसे प्राचीन हिन्दू धर्म भूत अर्थात् वाह्य तत्व कहते थे और एक तत्व नित्य है, शेष सब तत्व इसी एक से उत्पन्न हुए हैं इस मूल तत्व को 'आकाश' की संज्ञा प्राप्त है। आजकल 'ईथर' से जो भाव व्यक्त होती है, यह बहुत कुछ उसके सदृश है, यद्यपि पूर्णतः नहीं। इस तत्व के साथ प्राण नाम की आद्य ऊर्जा रहती है। प्राण और आकाश संघटित और पुनःसंघटित होकर शेष तत्वों का निर्माण करते हैं। कल्पान्त में सब कुछ प्रलयगत होकर आकाश और प्राण में प्रत्यावर्तन करता है।''

स्वामी विवेकानन्द सत्कार्यवाद का समर्थन करते हैं और कहते है कि, ''कारण और कार्य अभिन्न है - कार्य केवल कारण का रूपान्तरण मात्र है। अतएव यह समुदाय ब्रह्माण्ड शून्य से उत्पन्न नहीं हो सकता। बिना किसी कारण के वह नहीं आ सकता, इतना ही नहीं, कारण ही कार्य के भीतर सूक्ष्म रूप से वर्तमान है।'' सत्कार्यवाद में भी स्वामी विवेकानन्द परिणामवाद मानते हैं, इस तथ्य को इनके द्वारा दिए गए निम्न उदाहरणों से समझा जा सकता है। वे कहते है कि- ''एक छोटे से उद्भिद को ही लो। मनुष्य देखता है कि उद्भिद् धीरे-धीरे मिट्टी को फोड़कर उगता है, अन्त में बढ़ते-बढ़ते एक विशाल वृक्ष हो जाता है, फिर वह विनष्ट हो जाता है - केवल बीज छोड़ जाता है। वह मानो घूम-फिरकर एक वृत्त पूरा करता है। बीज से ही वह निकलता है, फिर वृक्ष हो जाता है और उसके बादद फिर बीज में परिणत हो जाता है। पक्षी को देखो, किस प्रकार वह अण्डे में से निकलता है, सुन्दर पक्षी का रूप धारण करता है, कुछ दिन जीवित रहता है, अन्त में मर जाता है और छोड़ जाता है, अन्य कई अण्डे अर्थात् भावी पक्षियों के बीज''

मनुष्य के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का होता है। प्रत्येक पदार्थ मानो किसी बीज से, किसी मूल उपादान से, किसी सूक्ष्म आकार से आरम्भ होता है और स्थूल से स्थूलतर होता जाता है। कुछ समय तक ऐसा ही चलता है, और अन्त में फिर से उसी सूक्ष्म रूप में उसका लय हो जाता है।

19 जनवरी 1996 ई. को स्वामी विवेकानन्द ने न्यूयार्क में दिये एक भाषण में यह स्पष्ट किया है कि- ''इस सिद्धान्त के समग्र जगत पर लागू करने से हम देखते हैं कि बुद्धि ही सृष्टि की प्रभु है, कारण है। जगत् के विषय में मानव की चरम धारणा क्या हो सकती है? वह है बुद्धि की अभिव्यक्ति, जगत् के एक भाग का दूसरे भाग से समायोजन। प्राचीन सृष्टि-रचनावाद इसी की अभिव्यक्ति का एक प्रयास है। हम जड़वादियों के साथ यह मानने को तैयार हे कि बुद्धि ही जगत की अन्तिम वस्तु है - सृष्टिक्रम में यही अन्तिम विकास है।''

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मजूमदार एवं श्री सत्येन्द्र नाथ -*विवेकानन्द चरित्र,* रामकृष्ण मठ, नागपुर
विवेकानन्द साहित्य - अद्वैत आश्रम मायावती अल्मोड़ा जन्मशती संस्कार
विवेकानन्द स्वामी - कर्मयोग, रामकृष्ण मठ, धन्तोली नागपुर
पाण्डेय, राम सकल -*विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री,* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
अन्वेशिका - रेडियन जर्नल आफ टीचर एजूकेशन

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,29-33
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 19 सितम्बर 2016

ऋग्वैदिक उषस् का अन्य देवताओं के साथ सम्बन्ध

डॉ. सुमन दूबे*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *ऋग्वैदिक उषस् का अन्य देवताओं के साथ सम्बन्ध* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सुमन दूबे* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

ऋग्वेद में उषा देवी का महत्त्वपूर्ण वर्णन है। ऋषियों ने उषा देवी की स्तुति अनेक देवताओं के साथ की है। सूर्य, अग्नि, अश्विनौ, इन्द्र, सोम, चन्द्रमा, द्यावापृथिवी, रात्रि इत्यादि देवताओं का उषा देवी से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। सूर्य देवता को उषा देवी के प्रेमी, पति, पुत्र के रूप में वर्णित किया गया है। आदित्य को उषा के पति के रूप में वर्णित किया गया है। जैसे सूर्य को उषा का प्रेमी कहा गया है उसी प्रकार से अग्नि को भी उषा का प्रेमी कहा गया है। उषाकाल में अग्नि देव अतिथि के रूप में मनुष्यों के घर जाते हैं। अश्विनौ देवों को उषस् का मित्र कहा गया है। उषा ने अश्विनौ को जगाया। सम्पूर्ण उषस् सूक्त में उषा को द्युलोक पुत्री के नाम से आह्वान किया गया हैं। द्यावापृथिवी को उषस् का पिता माता कहा गया है। उनकी गोद को उषा अपने तेज से पूर्ण करती हुई अपने विशाल प्रकाश को विशेष रूप से फैलाती है। इंद्र देवता ने उषा को उत्पन्न किया। सोम उषा के बल को बढाने वाला है। वह उषा का तेज बढ़ाते हैं। उषाओं को एक श्रेष्ठ पति की पत्नियाँ बनाया है। नित्य नवीन जन्म देने वाले उषा के पूर्व ही लुप्त होकर दिन के आगमन की सूचना देने वाले चन्द्रमा को उषा से सम्बद्ध किया गया है। उषा और रात्रि दोनों बहने हैं दोनों उषा और रात्रि अपने-अपने वर्ण को (शुभ्र और कृष्ण वर्णों को) प्राप्त होती है। वे दोनों परस्पर संघर्ष नहीं करती है और न ही परस्पर समय का उलंघन करती है। इस प्रकार उषा सभी देवताओं के साथ घनिष्ट रूप से सम्बद्ध हैं। माता के रूप में, कहीं पत्नी के रूप में और कहीं प्रेमिका के रूप में इनका सम्बन्ध देखने को मिलता है।

सर्वप्रथम सूर्य के साथ उषा सम्बन्ध अवलोकनीय है। सूर्य देवता का सम्बन्ध उषस् के साथ अनादि काल से रहा है। उषा देवी सूर्य के यात्रा के लिए मार्ग को प्रशस्त करती हैं।[1] सूर्य के प्रकाश के द्वारा प्रकाशित होती हैं।[2] सूर्य को उषा का प्रेमी कहा गया है।[3] इसीलिए सूर्य उषा का पीछा उसी प्रकार से करता है जैसे एक पुरुष किसी स्त्री का करता है।[4] इसको सूर्य की पत्नी के रूप में भी वर्णित किया गया है।[5] उषा का सूर्य की माता के रूप में वर्णन है। उषा को सूर्य की जन्मदात्री माना गया

* 352/ 158, अलोपीबाग, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

है सूर्य उषा के निकट आता है तथा सूर्य के जन्म लेते ही उषा अपनी अन्तिम श्वास छोड़ देती है, इसी समय सूर्य अपनी प्रथम श्वास ग्रहण करता है।[6] सूर्य निर्मल तथा अन्धकार रहित तेजस्वी उषाओं को प्रेरित करता है।[7] उषाकाल के बाद उदय होने वाला सूर्य मुख्य है और वही चमकता है।[8] सभी को जागृत करता है। अज्ञानी को ज्ञान तथा रूप रहितों को रूप प्रदान करते हुए उषा काल के बाद सूर्योदय होता है।[9] उषा बहुत दूर से आने वाली कही गई हैं। उषा ने बहुत दूर सूर्योदय स्थान द्युलोक से भी आगे से रथों को योजित किया।[10] दीप्तिमती उषा शुभ्रवर्ण सूर्य तक पहुँचती है।[11] पूज्यनीय सूर्य की द्युलोकपुत्री उषा प्रतीक्षा करती है।[12] प्रतिदिन सूर्योदय के पूर्व उत्पन्न होने पर भी पुरातनी, समान रूप वाली शोभायमान होती हुई देवी उषा मनुष्यों की आयु को हिंसित करती हैं जैसे कर्तनशील लुब्धक की पत्नी पक्षी को हिंसिंत करती है।[13] मनुष्यों के दिनों को घटाती हुई सूर्य की पत्नी उषा अपने प्रकाश के द्वारा प्रकाश करती है।[14] सूर्य की रश्मियों के साथ दृष्टिगोचर होती हुई उषा देव सम्बन्धी व्रतों का उलंघन नहीं करती है।[15] दीप्तिमान् सूर्य रूपी वत्स (बछडे) वाली दीप्तमती (प्रकाशवती) शुभ्रवर्णा उषा उदित होती हैं।[16] सूर्य के आगमन के लिए यह मार्ग को रिक्त कर देती हैं। इस समय स्तोता उस स्थल पर जाते हैं जहाँ मनुष्य अपनी आयु की वृद्धि को प्राप्त करता है।[17] यह उषा समस्त लोक के प्रति गमनशीला तथा अमृत (सूर्य) की पताका स्वरूप ऊपर स्थित है।[18] यह सूर्य की प्रेयसी, पत्नी, माता आदि के रूप में वर्णित उषा सूर्य के लिए मार्ग बनाने वाली है। सभी को प्रकाशित करती है।

ऋग्वेद में आदित्य की भी स्तुति की गई है। सूर्य का ही एक नाम आदित्य है। बारह आदित्यों (सूर्य का एक भाग) का समुदायवाचक नाम है! कुमार सम्भवम् में भी बारह आदित्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। यह केवल प्रलयकाल में उदित होते हैं।[19]

आदित्य के प्रकाश के समान यह उषाएं दृष्टिगोचर होती हैं।[20] आदित्य के तेजयुक्त स्थान को युवती स्त्री उषा हिंसित करती है किन्तु प्रतिदिन अलंकार शोभा करती हुई वह उषा उत्पन्न हुई।[21] आदित्य की रश्मियों को अनुकूल प्रवर्तित करती हुई अधिक से अधिक कल्याणकारी प्रज्ञा प्रदान करती है।[22] यह वस्त्र के भाँति (अंधकार को लपेटती हुई धनवती आदित्य (सूर्य) की पत्नी उषा जाती है।[23] उषा आदित्य (सूर्य) के मार्ग पर अच्छी प्रकार यात्रा करती हैं। विश्व को प्रज्ञापित करती हुई हिंसित नहीं करती प्रत्युत प्रकाशित करती है।[24]

प्रत्येक शब्द की व्युत्पति के द्वारा उसकी प्रकृति एवं स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। 'अग्नि' शब्द 'अंगति ऊर्ध्वं गच्छति' इस प्रकार बना है।[25] अग्नि का स्वभाव है ऊपर की ओर गमन करना। अग्नि तीन प्रकार की होती है। 1. गार्हपत्य अग्नि 2. आहवनीय अग्नि 3. दक्षिणाग्नि। गृह कार्य में प्रयुक्त होने वाली अग्नि गार्हपत्य अग्नि कही जाती है। यज्ञादि कर्म में प्रयुक्त अग्नि को आहवनीय अग्नि कहते हैं और श्राद्ध इत्यादि कर्मकाण्ड में प्रयुक्त होने वाली अग्नि को दक्षिणाग्नि कहते हैं। प्रतिदिन उषाकाल में यज्ञाग्नि के प्रज्वलित होने के कारण अग्नि देवता नैसर्गिक रूप से उषा देवी के साथ सम्बद्ध है! प्रायः इसी समय यज्ञाग्नि के प्रज्वलित होने के साथ-साथ अग्नि के ही अन्यतम रूप सूर्योदय का उल्लेख प्राप्त होता है।[26] अग्नि देवता का प्राकट्य उषा देवी के साथ-साथ अथवा उसके पूर्व ही होता है। उषा अग्नि को प्रज्वलित कराती है।[27] जैसे सूर्य को उषा का प्रेमी कहा गया है। उसी प्रकार से अग्नि को भी कभी- कभी उषा के प्रेमी के रूप में वर्णित किया गया है।[28] अग्निदेव उषा से प्राप्त होने वाले विलक्षण धन को मनुष्यों को दे देते हैं और प्रातः काल उठने वाले देवों को यज्ञ में ले जाते है।[29] अग्निहोत्र यज्ञ के हेतु पाली गई गाये जिस प्रकार प्रातः काल जागती है, उसी प्रकार आने वाले उषाकाल में यज्ञकर्त्ता यजमान अग्नि को प्रज्वलित करता है।[30] उषाकाल में अतिथि की भांति मनुष्यों के घर में जाने वाले अग्नि देव की स्तुति की जाती है। इस अग्नि में समस्त मनुष्य हवनीय पदार्थों का हवन करते हैं।[31] अग्नि औषधि और वन को जलाने के लिए स्वयं अपने मुख में स्थावर और जंगम जगत के अन्न को डालते समय अग्नि की किरणें वर्षाकालीन विद्युत की भांति अथवा उषाकाल के प्रकाश के समान दृष्टिगोचर होता है।[32] यह अग्नि महान पिता से उत्पन्न स्त्री रूपी उषा को प्रकट करता है।[33] उषा के द्वारा सेवित होता हुआ अग्नि प्रज्वलित होता हैं तब शत्रुओं का नाशकर्त्ता अपनी बहिन उषा को प्राप्त होता हैं।[34] उषाकाल में अग्नि की ज्वालाएँ अपनी डालियों को फैलाने वाले वृक्ष की भाँति अन्तरिक्ष की ओर फैलती है।[35] उषा का मुख रूपी अग्नि प्रदीप्त होता हैं।[36] अग्नि की वेदी प्रदीप्त होने पर बड़ी उषा अपने तेज से लोगों को आनन्दित करती हुई प्रकट होती है।[37] अग्नि देव से प्रार्थना की गई है कि तू उषा देवी से दाता को देने के लिए उत्तम घर जिसके पास है ऐसे अनेक प्रकार के धन को लेकर आवे और उषा काल में उठने वाले देवों को भी यज्ञ में लावे।[38] एक मंत्र में ऋषि ने अग्नि को अश्विनौ और उषा को साथ में लेकर

उत्तम वीर्ययुक्त बहुत यश प्रदान करने को कहा है।[39] अग्निदेव वरणीय धन की याचना करते हुए इधर आती हुई तथा चमकती हुई उषस् के प्रति जाते हैं।[40] दर्शनीया यह उषाएं लोगों को जगाती हुई, मार्ग को सुगम्य करती हुई, सूर्य के आगे जाती है। महान् रथवाली, महती, विश्व को व्याप्त करने वाली उषाएं अग्नि के आगे तेज को ले जाती है।[41] समस्त प्राणियों को संचरण के लिए प्रेरित करती हुई युवती स्त्री के समान यह उषा सबके समक्ष दीप्तिमती होती है। मनुष्य के अग्नि समिन्धन के समय उषा देवी ने अंधकार को नष्ट कर तेज को प्रकट कर दिया है।[42] ये उषाएं सूर्य, यज्ञ तथा अग्नि को उत्पन्न करती है।[43] यौवनशीला तथा बन्धनहीना उषाएँ आगे आती है। सूर्य, यज्ञ एवं अग्नि को प्रज्ञापित करती है।[44] इस प्रकार उषा अग्नि देवता के साथ सम्बद्ध है।

प्रातःकालीन युग्म देवता अश्विनौ के साथ भी उषा सम्बद्ध है।[45] अश्विनौ देवता उषा के साथ रहते हैं।[46] अनेक स्थलों पर उषा को अश्विनौ का मित्र कहा गया हैं।[47] अश्विनौ को जागृत करने के लिए उषा का आह्वान किया गया हैं।[48] उषस् ने अश्विनौ को जगाया।[49] अश्विनौ का रथ अश्वों से सम्बद्ध होने पर द्युलोक पुत्री उषा का जन्म होता हैं।[50]

द्युलोक-पुत्री के रूप में ऋग्वेद में सर्वत्र उषा को प्रस्तुत किया गया है।[51] ये द्युलोक-पुत्री पूर्व दिशा में दृष्टिगोचर होती है। प्रकाशमान वस्त्रों वाली समनस्का उषाएं शाश्वत् नियम (यासूर्य) के मार्ग का भलीभांति अनुसरण करती है। आकाशीय दिशाओं को हिंसित नहीं करती है।[52] व्यापनशील विस्तृत लोक के पूर्वार्द्ध भाग में रश्मियों को उत्पन्न करने वाली उषाएं अपनी पताका प्रकृष्ट रूप से प्रदर्शित करती है। अपने दोनों माता-पिता अर्थात् द्यावापृथिवी की गोद को तेज से पूर्ण करती हुई विशाल तथा फैला हुआ प्रकाश विशेष रूप से फैलाती है।[53] प्रकाश को उत्पन्न करती हुई सौभाग्यशालिनी तथा सुकर्मा उषाएं द्युलोक से पृथिवी तक फैलती है अर्थात् प्रकाश करती है।[54] माधुर्य गुण प्रदान करने वाली उषा ने ऊपर की ओर द्युलोक में तेज प्रसारित करती है।[55] धनवती उषा पृथिवी लोक एवं द्युलोक पर दीप्ति पूर्वक स्थिति हुई या व्याप्त हुई।[56] उषाएं दिवस-प्रकाश को द्युलोक के अन्तर्भाग तक विशेष रूप से व्यक्त करती है।[57]

इन्द्र देवता द्युलोक और पृथ्वी लोक इन दोनों को उषा के समान अपने तेज से भर देता है।[58] विशिष्ट रूप से प्रकाश के विजेता इन्द्र ने उषा को उत्पन्न किया या प्रकाशित किया।[59] इन्द्र द्वारा उषा के उत्पत्ति का भी वर्णन है।

सोम को उषा का बल बढ़ाने के लिए कहा गया है।[60] पवित्र होता हुआ सोम उषा को प्रकाशित करता है।[61] उषा का तेज बढ़ाते हुए सोमरस में उषाओं को एक श्रेष्ठ पति की पत्नियाँ बनाया।[62] सोम उषा का बल वर्धक है।

चन्द्रमा के साथ उषा का सम्बन्ध है। वह नित्य नवीय जन्म लेने वाले तथा उषा के पूर्व ही लुप्त होकर दिन के आगमन की सूचना देता है।[63]

वरुण से भी उषा का सम्बन्ध है। आज समान रूप वाली तथा कल समान रूप वाली उषाएं दीर्घकाल तक वरूण के धाम (उदयाचलप्रवर्तत) को सेवित करती है।[64] उषा वरुण की सहयोगिनी हैं।

उषा का रात्रि के साथ सदैव सम्बन्ध रहा है। उषस् और रात्रि ये दोनों देवियाँ दिन और रात की युग्म देवियों के रूप में ऋग्वेदीय सूक्तों में प्रसिद्ध है। यद्यपि उषासानक्ता देवियों को स्तुति एक भी सम्पूर्ण सूक्त में नहीं की गई है फिर भी समस्त ऋग्वेदीय सूक्तों में उषासानक्ता का महत्वपूर्ण स्थान है तथा ये दोनों अत्यंत लोकप्रिय देवियाँ हैं। द्युलोक के प्रान्त भाग को अंधकार रहित करती हुई (उषा देवी) प्रकट होती है, इसके बाद स्वमेव अपनी बहन (रात्रि) को बहुत दूर स्थान में अवकाश प्रदान करती है।[65] सूर्योदय के लिए सूर्यरहित स्थान में चली जाती है उसी प्रकार से यह रात्रि उषा के लिए स्थान रिक्त कर देती है।[66] उषा रात्रि को और रात्रि उषा को बड़े ही सौहार्द के साथ प्रकट होने का स्थान प्रदान करती है।

दीप्तमान् सूर्य रूपी वत्स (बछडे) वाली, दीप्तिमती (प्रकाशवती) शुभ्रवर्णा उषा उदित हुई। कृष्णवर्णा रात्रि ने इस उषा के स्थानों को रिक्त कर देती है। समान बन्धवाली, मरणधर्म रहिता, परस्पर सम्बद्ध, परस्पर अनुसरण करने वाली, दोनों उषा और रात्रि अपने-अपने वर्ण शुभ्र और कृष्ण वर्ण को प्राप्त होती हैं।[67]

दोनों बहनों का मार्ग समान है। देवताओं (सूर्य) द्वारा अवसानरहित मार्ग पर चलती है। शोभनरूप वाली, भिन्न स्वरूपा उषासानक्ता एक चित्र होकर अपने - अपने समयानुसार कार्य करती है। परस्पर संघर्ष नहीं करती हैं और न ही परस्पर समय का उलंघन करती है।[68]

अनेक रूप वाली दिन और रात्रि साथ विचरण करती है। एक रात्रि जाती है तब एक (दिन) आता है। जीवन के अन्तिम काल में (रात्रि) अंधकार को तिरोहित (या नष्ट) करती है। उषाएं दीप्तमान रथ से प्रकाश करती हैं।[69] इन पूर्वकालीन बहनों

में से एक पूर्व की ओर जाती है। दूसरी पश्चिम की ओर जाती है।[70] उषा अपनी भगिनी रात्रि के अंधकार को नष्ट कर देती है तथा अपने प्रकाश से पथ को प्रशस्त करती है।[71]

युग्म देवियों के रूप में ऋग्वेद के अनेक सूक्तों के मंत्रों में इनका उल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु बडे ही आश्चर्य की बात है कि इतने घनिष्ट रूप से सम्बद्ध होने पर भी उषस् सूक्तों में इनका आह्वान बहुत कम स्थलों पर किया गया है। आप्री देवताओं में उषा सानक्ता देवियों की भी गणना की गई है और प्रत्येक आप्री सूक्त के मंत्रों में एक मंत्र उषासानक्ता का आह्वान किया गया है।

इस प्रकार ऋग्वेद में उषा देवी और उनका अन्य देवताओं के साथ सम्बन्ध वर्णित है। उषा देवी सभी को प्रकाशित करने वाली हैं। सभी देवताओं के साथ सौहर्दपूर्ण सम्बन्ध रखने वाली हैं। किसी के भी साथ इसका द्वेष भाव नहीं दिखता है। उषा के बिना प्रकृति का सुरम्य दर्शन भी सम्भव नहीं है अतः उषा और अन्य देवताओं के साथ सम्बन्ध मानव के लिए अति प्रेरणास्पद एवं अह्लादित करने वाला है।

संदर्भ

[1]*ऋग्वेद संहिता*- 1.113.16
[2]*ऋग्वेद संहिता*- 1.113.9
[3]*ऋग्वेद संहिता*- 1.92.11
[4]*ऋग्वेद संहिता*- 1.115.2
[5]*ऋग्वेद संहिता*- 7.75.5, 4.5.13
[6]*ऋग्वेद संहिता*- 10.1.8, 9
[7]*ऋग्वेद संहिता*- 1.130.1
[8]*ऋग्वेद संहिता*- 1.83.3
[9]*ऋग्वेद संहिता*- 1.6.3
[10]*ऋग्वेद संहिता*- 1.48.7
[11]*ऋग्वेद संहिता*- 1.49.2
[12]*ऋग्वेद संहिता*- 1.92.5
[13]*ऋग्वेद संहिता*- 1.92.10
[14]*ऋग्वेद संहिता*- 1.92.11
[15]*ऋग्वेद संहिता*- 1.92.12
[16]*ऋग्वेद संहिता*- 1.92.12
[17]*ऋग्वेद संहिता*- 1.113.16
[18]*ऋग्वेद संहिता*- 3.61.3
[19]*कुमारसम्भवम्*- 2.24
[20]*ऋग्वेद संहिता*- 1.123.9
[21]*ऋग्वेद संहिता*- 1.123.9
[22]*ऋग्वेद संहिता*- 1.123.13
[23]*ऋग्वेद संहिता*- 3.61.4
[24]*ऋग्वेद संहिता*- 5.80.4
[25]*शब्दकोश*- वा, शि, आप्टे
[26]*ऋग्वेद संहिता*- 1.6.3
[27]*ऋग्वेद संहिता*- 1.69.1
[28]*ऋग्वेद संहिता*- 1.44.1
[29]*ऋग्वेद संहिता*- 5.1.1

[30] *ऋग्वेद संहिता*– 5.18.1
[31] *ऋग्वेद संहिता*– 10.91.5
[32] *ऋग्वेद संहिता*– 10.3.1
[33] *ऋग्वेद संहिता*– 10.3.2
[34] *ऋग्वेद संहिता*– 5.1.1
[35] *ऋग्वेद संहिता*– 5.76.1
[36] *ऋग्वेद संहिता*– 1.157.1
[37] *ऋग्वेद संहिता*– 1.44.1
[38] *ऋग्वेद संहिता*– 1.44.2
[39] *ऋग्वेद संहिता*– 3.61.6
[40] *ऋग्वेद संहिता*– 5.80.2
[41] *ऋग्वेद संहिता*– 7.77.1
[42] *ऋग्वेद संहिता*– 7.77.3
[43] *ऋग्वेद संहिता*– 7.80.2
[44] *ऋग्वेद संहिता*– 1.44.2
[45] *ऋग्वेद संहिता*– 1.183.2
[46] *ऋग्वेद संहिता*– 4.52.2, 3
[47] *ऋग्वेद संहिता*– 10.91.5
[48] *ऋग्वेद संहिता*– 3.58.1
[49] *ऋग्वेद संहिता*– 10.39.92
[50] *ऋग्वेद संहिता*– 1.124.3
[51] *ऋग्वेद संहिता*– 5.79.9
[52] *ऋग्वेद संहिता*– 1.124.3
[53] *ऋग्वेद संहिता*– 3.61.4
[54] *ऋग्वेद संहिता*– 3.61.5
[55] *ऋग्वेद संहिता*– 3.61.6
[56] *ऋग्वेद संहिता*– 7.79.2
[57] *ऋग्वेद संहिता*– 10.134.1
[58] *ऋग्वेद संहिता*– 2.92.7
[59] *ऋग्वेद संहिता*– 9.86.1
[60] *ऋग्वेद संहिता*– 9.96.21
[61] *ऋग्वेद संहिता*– 9.10.5
[62] *ऋग्वेद संहिता*– 9.36.3
[63] *ऋग्वेद संहिता*– 1.123.8
[64] *ऋग्वेद संहिता*– 1.92.11
[65] *ऋग्वेद संहिता*– 1.113.1
[66] *ऋग्वेद संहिता*– 1.113.2
[67] *ऋग्वेद संहिता*– 1.113.3
[68] *ऋग्वेद संहिता*– 1.113.6
[69] *ऋग्वेद संहिता*– 1.124.9
[70] *ऋग्वेद संहिता*– 10.172.4
[71] *ऋग्वेद संहिता*– 1.93.1, 1.142.6, 1.118.6, 2.3.6

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,34-40
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 26 सितम्बर 2016

गुप्तकालीन भारतीय इतिहास में गुहा स्थापत्य

राम कुमार*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *गुप्तकालीन भारतीय इतिहास में गुहा स्थापत्य* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *राम कुमार द्विवेदी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

पर्वतों को काट कर लयण (गुहा) बनाने की परम्परा का आरम्भ भारत में मौर्य-काल में हुआ था। उस समय बिहार प्रदेश में बराबर की पहाड़ियों में अशोक और उसके पौत्र दशरथ ने अनेक लयण बनवाये थे। इस परम्परा का जन्म यद्यपि उत्तर भारत-बिहार में हुआ था पर विकास दक्षिण और पश्चिम भारत में ही हुआ। यह परम्परा लगभग आठवीं शती ई0 तक इस देश में जीवित रही। इस परम्परा के जो वास्तु बने वे मुख्यतः बौद्ध हैं। बौद्ध-धर्म में प्रवज्या पर जोर दिया गया है। बौद्ध-भिक्षओं को ऐसे स्थानों की आवश्यकता थी जो जन-कोलाहल से दूर हों। अतः उन्होंने प्राचीन ऋषि-मुनियों का अनुकरण किया। जिस प्रकार प्राचीन ऋषि-मुनि गिरि गुफाओं और कन्दराओं में रहते थे, उसी प्रकार बौद्ध भिक्षुओं ने भी अपने निवास के लिए बिहार (संघाराम) और उपासना के लिए चैत्य, जंगलों के बीच, नदी के किनारे स्थित पर्वतों को काटकर लयण के रूप में बनाये।

चैत्य (बौद्ध-संघ का पूजागृह) शब्द के मूल में चि धातु है जिसका अर्थ है 'चयन' अथवा 'राशि एकत्र करना'। इससे वेदिका के अर्थ में 'चित्य' बना और फिर 'चैत्य' के रूप में वह महान् व्यक्तियों के स्मारक तथा देवालय के अर्थ में प्रयोग में आने लगा। पश्चात् वह बौद्ध-संघ के पूजागृह के अर्थ में रूढ़ हो गया। यह सामान्यतः एक लम्बोतरा वास्तु था जिसका पिछला भाग गोल होता था और गोलवाले भाग के बीच में पूजा के निमित्त स्तूप अथवा बुद्ध की प्रतिमा होती थी। उसके चारों ओर एक प्रदक्षिण पथ होता था। इन चैत्यगृहों की छत प्रायः कुब्जपृष्ठ होती थी। इनका निर्माण बिहार (संघारामों) के साथ ही किया जाता था। संघ की बैठकों में सम्मिलित होने अथवा वर्षावास करने भिक्षु जब बिहारों में एकत्र होते तो उन्हें उपासना के लिए चैत्य-गृहों की आवश्यकता थी। इसी प्रकार विहार भी मात्र भिक्षुओं के निवास-स्थान न थे। वे निवास-स्थान के साथ-साथ श्रवण-वाचना और संघ की परिषदों के लिए मण्डप का भी काम देते थे।

इस प्रकार के जो लयण चैत्य और विहार गुप्तकाल में बने वे अधिकांशतः गुप्त साम्राज्य के बाहर-अजिण्ठा, वैरूळ[1] (एलोरा) और औरंगाबाद में हैं। गुप्त साम्राज्य के भीतर इस परम्परा के लयण केवल मध्य प्रदेश में बाघ नामक स्थान पर

* शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

देखने में आते हैं। बौद्धों की इस वास्तु परम्परा का अनुकरण ब्राह्मण और जैन-धर्म के मानने वालों ने शायद गुप्तकाल में करना आरम्भ किया। उनके बनाये लयण वैरुळ (एलोरा) में काफी संख्या में देखने में आते हैं। पर गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत उन्होंने प्रारम्भिक प्रयोग मात्र ही किया। इस प्रकार के लयण मध्य प्रदेश में विदिशा के निकट उदयगिरि में ही अब तक देखे गये थे। उनमें प्रायः सभी ब्राह्मण हैं केवल एक जैन है। इस प्रकार का एक ब्राह्मण लयण गुप्तकाल में बिहार में भी बना था। यह लयण, भागलपुर जिले में मन्दारगिरि पर है। पर उसकी ओर अभी तक पुरातत्वविदों का ध्यान नहीं गया है। उसकी चर्चा पहली बार यहाँ की जा रही है। सम्भव है, इस प्रकार के कुछ लयण और भी हों, जो अभी अज्ञात हैं।

अजन्ता स्थित लयणों की संख्या 29 हैं। उनमें से पाँच तो ईसा पूर्व की शताब्दियों के हैं। शेष का निर्माण विवेच्यकाल में हुआ है। इन गुप्तकालीन चैत्यों में दो (लयण 19 और 26) चैत्य और शेष सब विहार है। चैत्यों में लयण 19, लयण 26 से पहले का बना प्रतीत होता हैं। ये चैत्यगृह अपनी सामान्य रूपरेखा में गुप्त-पूर्व के चैत्यों के समान ही हैं। कुब्जपृष्ठ के नीचे दोनों ओर पंक्तिबद्ध स्तम्भ टोड़ों के ऊपर छत को उठाये पूरी गहराई तक चले गये हैं और स्तूप के पीछे अर्द्ध-वृत्त बनाते हैं। स्तूप गर्भभूमि पर हर्मिका और छत्रावली के साथ खड़ा है। इन चैत्यों की उल्लेखनीय बात यह है कि पूर्ववर्ती चैत्यों के भीतर-बाहर कहीं भी बुद्ध मूर्ति का उच्चित्रण नहीं हुआ था। इन गुप्तकालीन चैत्यों के भीतर-बाहर कहीं भी बुद्ध मूर्ति का उच्चित्रण नहीं हुआ था। इन गुप्तकालीन चैत्यों के भीतर-बाहर अनेक स्थलों पर बुद्ध की मूर्ति का उच्चित्रण हुआ है; स्तूप में भी सामने की ओर उनकी मूर्ति उकेरी गयी है।

बिहारों में गुप्तकालीन प्राचीनतम् विहार 11, 12 और 13 कहे जाते हैं; उनका समय 400 ई0 के आसपास अनुमान किया जाता है। 16वीं लयण का निर्माण वाकाटक नरेश हरिषेण के मंत्री ने और लयण 17 को उनके एक माण्डलिक सामन्त ने कराया था। इनका समय 500 ई0 के आसपास है। लयण 1 और 2, 600 ई0 के आसपास बने होंगे। 16वें और 17वें लयण की ख्याति मुख्य रूप से अपने चित्रों के कारण है; किन्तु वास्तु-कला की दृष्टि से भी वे उतने ही महत्त्व के हैं। लयण 16, 65 फुट वर्गाकार 20 स्तम्भों का मण्डप हैं; जिसके अगल-बगल भिक्षुओं के रहने की 6-6, बरामदें के दोनों सिरों पर दो-दो और पीछे दो कोठरियाँ हैं। पीछे की दो कोठरियों के बीच में एक चौकोर गर्भगृह है जिसमें बुद्ध की प्रलम्बपाद (पैर नीचे किये) मूर्ति है। स्तम्भों का सौन्दर्य अवर्णनीय है। उनमें कोई भी एक-सा नहीं है फिर भी उनमें ऐसी समन्वयता है कि उनकी विविधता किसी प्रकार खटकती नहीं। लयण 17 भी लयण 16 के समान ही है। इन दोनों लयणों की दीवारों पर बुद्ध और जातक कथाओं के चित्र अंकित किये गये थे और छतें बहुविध चित्रों से अलकृत थीं। इनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। लयण 2 का मण्डप समस्त लयणों के मण्डपों से बड़ा है, वह 87 फुट वर्गाकार है और उसमें 28 स्तम्भ हैं। अन्य लयणों में केवल लयण 24 ही उल्लेखनीय है, इसका मण्डप 75 फुट वर्ग में है और उसमें 20 स्तम्भ हैं। शायद पल्लव नरेश नरसिंह वर्मन द्वारा चालुक्य-नरेश पुलकेशी की पराजय के पश्चात् सातवीं, शती के मध्य में लयणों का निर्माण अजन्ता में समाप्त हो गया।

अजिण्ठा से प्रायः 75 मील दूर सह्याद्रि की पर्वत-शृंखला में वैरूळ (एलोरा) के लयण हैं, जो बौद्ध, ब्राह्मण और जैन तीनों ही धर्मों से सम्बन्धित हैं। किन्तु बौद्ध लयण अन्य दो धर्मों के लयणों से पहले के हैं। ये बौद्ध-लयण शृंखला में दक्षिणी छोर पर स्थित हैं और संख्या में 12 हैं। उनका निर्माण काल 550 और 750 ई0 के बीच आँका जाता है। इन 12 लयणों में से केवल 5, जो प्राचीनतम् हैं, गुप्तकाल के हैं। पाँचवें लयण के अतिरिक्त अन्य सब लयण अजिण्ठा के लयण-विहारों के समान ही वर्गाकार हैं। लयण 5 वर्गाकार न होकर आयताकार हैं। वह लम्बाई में 117 फुट और चौड़ाई में 70 फुट है। मण्डप के भीतर गर्भ-भूमि तक दोनों ओर स्तम्भों की पाँत चली गयी है।

औरंगाबाद के लयण भी अजिण्ठा और एलोरा के लयणों की शृंखला में ही हैं। यहाँ उनकी संख्या 12 हैं; उनमें एक चैत्य और शेष विहार हैं। चैत्य का निर्माणकाल तीसरी शती ई0 और विहारों का छठी शती ई0 कहा जाता है। ये सभी अजिण्ठा के लयणों के समान ही बने हैं पर आकर्षणहीन हैं। उनमें कोई उल्लेखनीय विशेषता परिलक्षित नहीं होती। लयण 3 में उच्चित्रित दम्पति दर्शकों को अवश्य अपनी ओर आकृष्ट करते हैं।

बाघ के लयण-बाघ के लयणों की संख्या 9 है और वे सभी संघाराम (विहार) रहे हैं।[2] उपलब्ध संकेतों से ऐसा अनुमान होता है कि उनका निर्माण 500 और 500 ई0 के आसपास हुआ होगा; किन्तु यह कहना कठिन है कि वे गुप्त सम्राटों की छत्रछाया में निर्मित हुए अथवा उनका निर्माण वाकाटक अथवा अन्य किसी शासक के अन्तर्गत।

जिस पर्व-शृंखला में इन लयणों का निर्माण हुआ है उसका पत्थर बहुत ही नरम किस्म का है; फलतः वहाँ के तीन लयण (लयण 7, 8, 9) तो एकदम नष्ट हो गये हैं। लयण 7 के सम्बन्ध में इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि वह लयण 2 की अनुकृति ही रहा होगा और उसके स्तम्भ तथा स्तूप अन्य लयणों सरीखे ही रहे होंगे। अन्य दो लयणों के सम्बन्ध में तो इतना भी नहीं कहा जा सकता। शेष लयणों में लयण 1 के सामने का मण्डप, जिसमें प्रवेश-द्वार था, नष्ट हो गया है। मूल लयण 23 फुट लम्बा और 14 फुट चौड़ा कमरा सरीखा है जिसमें चार स्तम्भ हैं, और उनकी भी हालत खराब है। अतः इसके सम्बन्ध में कुछ भी कथनीय नहीं है।

लयण 2, जिसे लोग पाण्डवों की गुफा के नाम से पुकारते हैं, सब गुफाओं में अधिक सुरक्षित है और देखने में भी भव्य है। इसके बीच में स्तम्भयुक्त मण्डप है, उसके दो ओर छोटी-छोटी कोठरियाँ हैं। पीछे की ओर स्तूप (चैत्य) गृह है और सामने स्तम्भयुक्त बरामदा। इस प्रकार यह लगभग डेढ़ सौ फुट लम्बा है। सामने का बरामदा गिर गया है, उसके छः अठपहल खम्भों के केवल निचले अंश बचे हैं। बरामदों के सामने दायें मूर्तियों के लिए रथिकाएँ (आले) बनी हुई हैं; एक में तो मूल मूर्ति अब भी है किन्तु पहचानी नहीं जा सकी। दूसरी में किसी ने गणेश की मूर्ति लाकर रख दी है। बरामदे से मण्डप के भीतर जाने के लिए तीन दरवाजे हैं और उन दरवाजों के बीच की जगह में हवा और रोशनी जाने के लिए दो खिड़कियाँ हैं।

भीतर मण्डप और कोठरियों के चारों ओर बीस स्तम्भ हैं और चार कोनों पर चार अर्द्ध स्तम्भ। इन स्तम्भों के नीचे एक पलता-सा चौकोर पीठ है, उसके ऊपर कण्ठ है और कण्ठ के ऊपर चार फुट तक स्तम्भ सपाट चौपहल है; उसके ऊपर के भाग के रूपों में भिन्नता है। कुछ अठपहले, कुछ सोलहपहले, कुछ बीसपहले और कुछ चौबीसपहले हैं, कुछ में चक्करदार लहरिया हैं, कुछ अन्य रूप में लिये हुए है, और तब टोड़ा (ब्रैकेट) है। मण्डप के बीच में भी चार स्तम्भ हैं। अजिण्ठा, बैरूळ आदि में जहाँ के पत्थर अच्छे किस्म के हैं, इससे बड़े-बड़े मण्डप बिना किसी स्तम्भ के सहारे के बने हैं। यहाँ इन अतिरिक्त स्तम्भों की आवश्यकता कमजोर किस्म के पहाड़ होने के कारण छत का बोझ सँभालने के लिए हुई है। इसे बाघ के लयणों की नवीनता अथवा विशेषता कह सकते हैं।

अगल-बगल की कोठरियाँ संख्या में बीस हैं और वे सभी लगभग आठ फुट लम्बी और उतनी ही चौड़ी और ऊँची हैं। उनके भीतर दीपक रखने के स्थान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पूरब के कोने की एक कोठरी से लगी दो अधबनी कोठरियाँ और हैं। उत्तर के कोने की तीन कोठरियों के पीछे भी कुछ ऊँचाई पर कुछ और कोठरियाँ हैं जो दूसरे लयण की होंगी पर उनका लगाव इस लयण से भी जान पड़ता है। पीछे के चैत्यगृह के सामने एक छोटा-सा मण्डप है, जिसमें बड़े मण्डप की ओर दो स्तम्भ हैं। इस छोटे मण्डप की दीवारों पर मूर्तन हुआ है। चैत्यगृह के द्वार के अगल- बगल एक-एक द्वारपाल और बगल की दीवारों पर बुद्ध और उनके साथ दो अन्य आकृतियाँ उच्चित्रित हैं। चैत्यगृह में पर्वत काट कर ही स्तूप बनाया गया है जो छत से लगा हुआ है।

तीसरा लयण, जो हाथीखाना के नाम से प्रसिद्ध है, संयोजन में दूसरे लयण से सर्वथा भिन्न है। इसमें प्रवेश-मण्डप के सामने आठ अठपहल स्तम्भ से युक्त एक लम्बा मण्डप है और उसके पीछे एक दूसरा मण्डप है, वह भी आठ स्तम्भों पर खड़ा है। सामने वाले प्रवेश-मण्डप और उससे लगे मण्डप के दोनों ओर कोठरियाँ रही होंगी; किन्तु एक ओर की कोठरी के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता, दूसरी ओर की कोठरियों को दो विभागों में बाँटा गया है। प्रवेश-मण्डप से लगी कोठरियाँ संख्या में तीन हैं और तीन दिशाओं में बनी हैं और गलियारों द्वारा एक-दूसरे से अलग की गयी हैं। इसी प्रकार भीतर वाले मण्डप में लगी पाँच कोठरियाँ हैं। वे भी एक-दूसरे से अलग हैं। अन्तिम मण्डप के साथ कोई कोठरी नहीं है। इस प्रकार इस लयण की बनावट सामान्य विहारों (संघारामों) से भिन्न है।

चौथा लयण, जो रंगमहल कहलाता है, शायद सब लयणों से सुन्दर रहा होगा। यह तीसरे लयण से लगभग 250 फुटकर पाँचवीं लयण से सटी हुई है। इन दोनों लयणों के सामने एक संयुक्त खुला बरामदा था। इस बरामदे में 22 स्तम्भ थे। पर स्तम्भ और मण्डप के छत का अधिकांश भाग गिर गया है, केवल दोनों कोने के अर्द्ध-स्तम्भ बचे हैं। यह लयण, लयण 2 के

अनुरूप ही है। उसी की तरह सामने तीन द्वार और दो खिड़कियाँ हैं, उसी की तरह का स्तम्भयुक्त मण्डप भी है, अगल-बगल कोठरियाँ हैं और पीछे की ओर चैत्यगृह है। इस लयण का मुख्य मण्डप 94 फुट लम्बा है और इसमें 38 स्तम्भ हैं, इस प्रकार यह लयण 2 से बड़ा है; इसमें कोठरियों की संख्या भी अधिक है। इसमें उनकी संख्या 28 हैं। इसमें चैत्यगृह से लगी कोठरी के पीछे एक और कोठरी है, इसी प्रकार दक्षिणी कोने की कोठरी के पीछे भी एक दूसरी कोठरी है। यह दूसरी कोठरी पहली कोठरी के फर्श से नीचे है। मुख्य मण्डप में छत को सँभालने के लिए लयण 2 के समान बीच में चार स्तम्भ तो हैं ही, साथ ही उसके तीन ओर दो-दो स्तम्भ और हैं जिनपर कोठरियों के सामने के बरामदों से आगे की ओर निकले हुए छज्जे टिके हुए हैं। इन छज्जों पर मानवमुखयुक्त गवाक्षों का उच्चित्रण हुआ है। इस लयण के स्तम्भ, दूसरे लयण के स्तम्भों की तरह ही हैं, पर अधिक विभिन्नताओं से भरे हैं। इनके शीर्ष कल्पित और वास्तविक पशुओं से उच्चित्रित हैं, कुछ पर सवार भी हैं। बाहर बीच के द्वार के ऊपर एक पंक्ति बुद्ध की मूर्तियों की है, उसके नीचे मानवमुखयुक्त गवाक्षों की है। कोने पर दोनों ओर कुब्जक सहित मकरवाहिनी वृक्षिकाओं की है, जिसने गुप्तकला में आगे चलकर गंगा-यमुना का रूप धारण किया। द्वार के सिरदल और बाजुओं पर लता-पत्रों का अंकन हुआ है। बाजुओं में सिरदल के क्रम में आते लतापत्र के अतिरिक्त अलंकरणों के तीन पाँत और हैं। भीतर से पहली पाँत अलंकृत रज्जुका की है, उसके बाद अर्द्धस्तम्भ का अंकन है जिसके नीचे के भाग सादे हैं। ऊपर काफी चौड़ी शीर्ष-पीठ है जिसके ऊपर दो फुल्ल-कमल अंकित हैं। उसके ऊपर कण्ठ पर कलश और उसके ऊपर पुनः तिहरा कण्ठ और एक अर्द्धकलश है।

पाँचवें लयण का बरामदा चौथे लयण के विस्तार में ही है, किन्तु यह स्पष्ट पता नहीं चलता कि चौथे और पाँचवें लयण का निर्माण साथ-साथ हुआ था। बरामदें की दीवार के चित्रण से ही दोनों सम-सामयिक अनुमान किये जा सकते हैं। यह लयण भिक्षुओं के रहने का विहार न होकर शायद सभामण्डप मात्र था। यह 95 फुट लम्बा और 44 फुट चौड़ा हाल सरीखा है जिसमें स्तम्भों के दो पंक्ति हैं। इसके सभी स्तम्भ एक ही ढंग के हैं- गोल और एकदम सादे, ऊपर भी सादा कण्ठ और शीर्ष। इसमें एक प्रवेशद्वार और तीन खिड़कियाँ हैं। वे सब भी सादे हैं। यदि इस लयण में कोई अलंकरण हुआ था तो वह चित्रों के रूप में ही।

छठा लयण पाँचवे लयण के क्रम में ही है। पाँचवें लयण के बरामदें से ही छठे लयण में जाने का मार्ग है। यह लयण 46 फुट का वर्गाकार मण्डप है, सामने बरामदा रहा होगा पर अब उसके कोई चिह्न नहीं हैं। इसमें एक प्रवेश-द्वार और उसके अगल-बगल एक-एक खिड़की हैं। बीच में चार अठपहल खम्भे हैं। पीछे की ओर तीन कोठरी और एक ओर दो कोठरियाँ हैं। पाँचवी गुफा में प्रवेश करने के द्वार के अर्द्धस्तम्भों को छोड़कर इस लयण में कोई अलंकरण ज्ञात नहीं होता।

बाघ के ये लयण अपनी भू-योजना में अजिण्ठा के संघारामों के सदृश ही कहे जायेंगे किन्तु उनकी अपेक्षा ये बहुत ही सादे हैं। उनसे इनका अन्तर इस बात में भी है कि जहाँ अजिण्ठा में स्तूपों पर बुद्ध की प्रतिमा का अंकन हुआ है, यहाँ के स्तूपों में उसका अभाव है। अन्य विशेषताओं के रूप में बीच के अतिरिक्त स्तम्भों की चर्चा पहले की ही जा चुकी है।

उदयगिरि के लयण-उदयगिरि विदिशा के निकट, बेसनगर से दो मील दक्षिण-पश्चिम और साँची से 5 मील पर स्थित लगभग डेढ़ मील लम्बी पर्वत-शृंखला है; उसकी अधिकतम ऊँचाई उत्तर-पूर्वी भाग में 250 फुट है। इसके बीच का भाग नीचा है जिसमें पहाड़ के आरपार एक सँकरी गली कटी हुई है। इसे किसी समय फाटक लगाकर बन्द किया जाता रहा होगा। उसके उत्तरी भाग में फाटक के चिह्न अब भी वर्तमान हैं। इस पहाड़ी का पत्थर नर्म और परतदार है; इसी परतदार पत्थर होने का लाभ उठा कर उसके उत्तर-पूर्वी भाग में दस-बारह लयण काटे गये थे।[3] अधिकांश लयण बहुत छोटे हैं; उनके द्वार के सामने चिनाई पर बरामदे अथवा मण्डप बनाये गये थे। इन लयणों में से दो में द्वितीय चन्द्रगुप्त के काल के अभिलेख हैं, तीसरे में गुप्त संवत् 106 का लेख है, उसमें किसी शासक का नाम नहीं है किन्तु उसे प्रथम कुमारगुप्त के काल का कहा जा सकता हैं।

पहला लयण पहाड़ी की आधी ऊँचाई पर स्थित है। उसे लयण कहना कुछ असंगत लगता है, क्योंकि उसका सामना और एक किनारा चिनाई कर खड़ा किया गया है। उसकी छत प्राकृतिक पर्वत के आगे निकले भाग से बनी है। यह 7 फुट लम्बा और 6 फुट चौड़ा कमरा है। सामने चार खम्भें हैं। बीच के खम्भों में तीन फुट का अन्तर है और इधर-उधर खम्भे केवल एक फुट के अन्तर पर हैं। पीछे की दीवार में पर्वत को कोर कर कोई प्रतिमा बनायी गयी थी, किन्तु अब वह नष्ट हो गयी

है केवल एक खड़ी आकृति की रेखा भर बची है। दूसरा लयण लगभग भूमितल के निकट है और बहुत कुछ नष्टप्राय है। यह लयण लगभग आठ फुट लम्बा और 6 फुट चौड़ा था। सामने की दीवाल हो गयी है किन्तु पर्वत में दो अर्ध-स्तम्भों के चिह्न बचे हैं।

तीसरा लयण दूसरे लयण से लगभग 41 फुट हट कर दायीं ओर है। इस लयण के द्वार के ऊपर वीणावादक के उच्चित्रण के आधार पर कनिंगहम ने इसका उल्लेख वीणा-लयण के नाम से किया है। यह लयण लगभग 14 फुट लम्बा और पौने बारह फुट चौड़ा है और उसमें 6 फुट ऊँचा और सवा दो फुट चौड़ा अलंकृत द्वार है। द्वार के सिरदल और बाजू में अलंकरणों की तीन पाँत हैं। सिरदल के निचली पाँत में पाँच कमल हैं जिनके बीच गोल फलक में आकृति अंकित है। बीचवाले कमल में सिंह, अगल-बगल वाले में मकर और शेष दो में वीणावादक और सितारवादक अंकित हैं। अलंकरण पातों के बाहर अर्द्ध-स्तम्भों का अंकन हुआ है जिनके ऊपर घण्टाकार शीर्ष है और उनके ऊपर मकरवाहिनी है। भीतर एकमुखी लिंग प्रतिष्ठित है। लयण के सामने चिना हुआ मण्डप था जो अगल-बगल दो छोटे तथा बीच में दो बड़े स्तम्भों के सहारे खड़ा था। यह मण्डप एक अन्य खुले लयण के आगे तक चला गया था। यह खुला लयण सवा दस फुट लम्बा और पौने सात फुट चौड़ा है। उसमें अष्टमातृकाओं का उच्चित्रण हुआ है।

चौथा लयण भी खुला हुआ है और 22 फुट लम्बा, पौने तेरह फुट ऊँचा और केवल तीन फुट चार इंच गहरा (चौड़ा) है। इसकी दीवार पर वराह का सुप्रसिद्ध उच्चित्रण हुआ है। वराह के दोनों ओर गंगा-यमुना के अवतरित हो और मिल कर समुद्र में जा मिलने का सुन्दर उच्चित्रण हुआ है। गंगा और यमुना नदी धाराओं के बीच क्रमशः मकर और कच्छप पर खड़ी घट लिये नारी के रूप में अंकित की गयी हैं और समुद्र को वरुण के रूप में पुरुष-रूप में घट लिये दिखाया गया है।

वराह लयण से थोड़ा हट कर पाँचवीं लयण हैं जिसमें द्वितीय चन्द्रगुप्त के 82वें वर्ष का उनके सनकानिक सामन्त का अभिलेख है। यह लयण 14 फुट लम्बा और साढ़े बारह फुट चौड़ा है। प्रवेश-द्वार के सामने पत्थर काट कर बनाया गया 23 फुट आठ इंच लम्बा और 5 फुट 10 इंच चौड़ा बरामदा है। द्वार जो बरामदे के दक्षिणी छोर के निकट है, काफी अलंकृत है; ऊपर दोनों ओर मकरवाहिनी वृक्षिकाएँ हैं जिसका लोगों ने सामान्यतः गंगा-यमुना के रूप में उल्लेख किया है। द्वार के दोनों ओर उच्चित्रण है और एक ओर के उच्चित्रण के ऊपर उपर्युक्त अभिलेख है।

इस लयण से कुछ हट कर दायीं ओर पर्वत को काट कर स्तूपनुमा वास्तु का निर्माण हुआ है, जिसका आधार चौकोर है और छत तवानुमा पत्थर की बनी है। इस कारण लोग इसको तवा लयण कहते हैं। इसके उत्तरी भाग में एक द्वार है और उसके भीतर 13 फुट 10 इंच लम्बा और 11 फुट 9 इंच चौड़ा कमरा है। कमरे के पिछली दीवार पर एक अभिलेख है, जिससे ज्ञात होता है कि उसे द्वितीय चन्द्रगुप्त के सचिव पाटलिपुत्र-निवासी वीरसेन ने निर्मित कराया था। इसके सामने पहले मण्डप था। इसका अनुमान द्वार के ऊपर बने खड्डे से होता है जिसके सहारे छत का निर्माण किया गया रहा होगा। द्वार के दोनों ओर द्वारपालों का अंकन हुआ था जो अब बहुत ही विकृत अवस्था में हैं। कमरे की छत के ऊपर साढ़े चार फुट ब्यास के फुल्ल कमल का अंकन हुआ है।

वीरसेन लयण (तवा लयण) के बगल से पर्वत के आरपार गली बनी हुई है। इस गली के बनाने के लिए गहराई में केवल 12 फुट पत्थर काटे गये थे और लम्बाई में यह गली 100 फुट होगी। इस गली के बनाने से दोनों ओर जो दीवार निकाली, उसका उपयोग उच्चित्रण के लिए किया गया है। इस उच्चित्रण में अनन्त-शैय्या का दृश्य अंकित है। भगवान् विष्णु शेषनाग पर लेटे हुए हैं और गरुड़ तथा सात अन्य आकृतियाँ उनके निकट हैं। यह काफी बड़ा उच्चित्रण है किन्तु अब बहुत-कुछ नष्ट हो गया है।

इस गली से आगे आठवाँ लयण है जो 10 फुट 4 इंच लम्बी और 10 फुट चौड़ी कोठरी मात्र है। द्वार पर अर्द्ध-स्तम्भ बना है जिस पर घण्टाकार कटावदार शीर्ष है। इसमें एक ओर गणेश और दूसरी ओर माहेश्वरी का उच्चित्रण है। इससे उत्तर -पूर्व कुछ हट कर उदयगिरि ग्राम के निकट नवाँ लयण है, जिसे कनिंगहम ने अमृत-लयण का नाम दिया है। इसके भीतर शिवलिंग प्रतिष्ठित है; किन्तु संवत् 1093 (1036 ई0) के एक अभिलेख से, जिसे किसी यात्री ने एक स्तम्भ पर अंकित किया है, ज्ञात होता है कि उन दिनों उसमें विष्णु की उपासना होती थी। यह उदयगिरि के समस्त लयणों में सबसे बड़ा है अर्थात् 22 फुट लम्बा और 19 फुट चार इंच चौड़ा है। छत को सँभालने के लिए चार बड़े-बड़े स्तम्भ हैं जो 8 फुट ऊँचे और 1

फुट 7 इंच वर्गाकार हैं। इन स्तम्भों के शीर्ष काफी अलंकृत हैं। उनमें चार कोनों पर चार पक्षधारी शृंगयुक्त पशु अपनी पिछली टाँगों पर खड़े हैं और अगले पंजों से अपना मुँह छू रहे हैं। इसकी छत भी अन्य लयणों से भिन्न है। स्तम्भ के ऊपर बने धरण से वह नौ वर्गों में बँटा है। बीच के वर्ग में चार वृत्तों वाला फुल्ल-कमल का अंकन है। उसकी खाली जगह भी रेखाओं से भरी हुई है। इस लयण का द्वार भी अन्य लयणों की अपेक्षा अधिक अलंकृत है। ऊपर दोनों ओर मकरवाहिनी का अंकन है; बीच में समुद्रमन्थन का दृश्य उच्चित्रित है और इसके ऊपर नवग्रह का अधबना उच्चित्रण है। इस लयण के सामने एक तीन द्वारों वाला बरामदा था जिसमें बाद में एक हाल जोड़ दिया गया, जिससे उसका आकार 27 वर्ग के मण्डप-सा बन गया। इस मण्डप के कुछ स्तम्भ और दीवार ही अब बचे हैं। कनिंगहम का मत है कि ृायद यह लयण समूह में सबसे बाद का है।

दसवाँ लयण पर्वत के उत्तरी-पश्चिमी छोर पर है, उस तक पहुँचना आसान नहीं है। यह लयण 50 फुट लम्बा और 16 फुट चौड़ा है और अनगढ़ पत्थर चुन कर बने दीवारों से पाँच कमरों के रूप में विभक्त है। आखिरी कमरे से लगा एक और लयण है जिसमें इसी प्रकार बने तीन कमरे हैं। पहले लयण में एक अभिलेख है जिससे ज्ञात होता है कि इस लयण का निर्माण गुप्त संवत् 106 में हुआ था और उसके द्वार पर पार्श्वनाथ की स्थापना की गयी थी। उदयगिरि के लयणों में अकेला यही लयण जैन-धर्म से सम्बद्ध है; अन्य सब ब्राह्मण लयण हैं।

उदयगिरि के इन लयणों में न तो वह भव्यता है और न वह सुचारुता जो अन्यत्र ज्ञात बौद्ध लयणों में देखने में आती है। इनके बाहर मण्डप चिन कर बनाये गये थे, यह असाधारण-सी बात है; यह अन्यत्र अज्ञात है। वास्तुकला की दो विधाओं का यह समन्वय मितव्ययता की दृ-िट से किया गया था अथवा तख्त की अनुपयुक्तता के कारण, कहा नहीं जा सकता। किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि चिनाई के काम में भी वह सुघरता नहीं है जो अन्य चिने हुए वास्तुओं में देखने में आता है।

मन्दारगिरि भागलपुर (बिहार) जिले में बंका से सात मील दक्षिण स्थित 700 फुट ऊँची पहाड़ी है। इसका उल्लेख पुराणों में पाया जाता है। इस पहाड़ी के पश्चिमी भाग में ढाल पर विष्णु का एक भग्न मन्दिर है, उससे कुछ हट कर पश्चिम की ओर एक पन्द्रह फुट लम्बा और दस फुट चौड़ा कोठरीनुमा लयण है। इस लयण की छत सम्भवतः कुब्ज पृष्ठ है।[4] लयण के भीतर एक श्रोत-निर्झर है जिसे लोग आकाश-गंगा कहते हैं। इसमें पर्वत में ही उकेरी गयी नृसिंह की एक मूर्ति है।[5] इसमें चौथी-पाँचवीं शती के गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में एक अभिलेख भी है जिसमें वर्ष 30 के भाद्रपद 12 की तिथि दी हुई है।[6] यह वर्ष किस संवत् में है, यह कहना कठिन है किन्तु यह भू-भाग गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत था, इस कारण इस तिथि के गुप्त संवत् में होने का ही अनुमान होता है। इस प्रकार यह भी अनुमान होता है कि इस लयण का निर्माण आरम्भिक गुप्तकाल में हुआ था और इसमें प्रतिष्ठित मूर्ति भी इसी काल की होगी। बिहार में बराबर के मौर्यकालीन लयणों के पश्चात् गुप्तकाल में इस लयण का निर्माण, इस बात का द्योतक है कि लयण-निर्माण की परम्परा इस भाग में भी जीवित थी। इस रूप में गुप्तकालीन वास्तुकला और मूर्तिकला की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है; किन्तु इसकी ओर पुरातत्त्वविदों ने अब तक कोई ध्यान नहीं दिया है।

संदर्भ ग्रंथ

अग्रवाल, वी0एस0 (1965) -*इंडियन आर्ट-ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन आर्ट फ्राम अर्लियस्ट टाइम्स टू थर्ड संचुरी,* ए0डी0, वाराणसी

गोयल, एस0आर (1967) -*ए हिस्ट्री ऑफ द इम्पीरियल गुप्ताज,* इलाहाबाद

फ्लीट, जे0एफ0 (1963) -*कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम्,* 3, वाराणसी (हिन्दी अनुवाद, गिरिजा शंकर प्रसाद मिश्र, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर)

सरकार, डी0सी0 (1965) -*सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शंत्,* कलकत्ता

श्रीवास्तव, प्रशान्त (2012) -*इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन क्वायंस,* 2 वाल्यूम, दिल्ली

सहायक ग्रंथ सूची

[1]*एलोरा का मूल नाम वेरूळ है, किन्तु यह नाम भला-सा दिया गया है।* एलोरा नाम ही अधिक प्रसिद्ध है।

[2]*द बाघ केब्ज,* पृष्ठ संख्या 6-16

[3]कनिंगहम, *आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट,* 10, पृष्ठ संख्या 46-54

[4]*इण्डियन ऐण्टीक्वेरी,* 1, पृष्ठ संख्या 46-51

[5]*कनिंगहम, आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट,* 8, पृष्ठ संख्या 130-136। इस लयण के भीतर कुछ और मूर्तियाँ हैं जिन्हें वामन, मधु और कैटभ के रूप में पहचाना गया है।

[6]*एपीग्रैफिया इण्डिका,* 36, पृष्ठ संख्या 305

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,41-44
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 10 सितम्बर 2016

शास्त्रीय संगीत की प्रमुख शैलियों और बंदिशें

डॉ. रूपाली जैन*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *शास्त्रीय संगीत की प्रमुख शैलियों और बंदिशें* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *रूपाली जैन* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

संगीत की परम्परा भारत में बहुत प्राचीन हैं। अन्य अनेक विद्याओं के समान संगीत का भी उद्गम स्थान वेद है। संगीत के उत्पति के लिए अलग-अलग धारणाए मिलती हैं धार्मिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण। संगीत का माध्यम हैं - नाद। इसके तीन रूप महत्वपूर्ण हैं- वैज्ञानिकतत्व, मनोवैज्ञानिक तत्व तथा सौंदर्य मूलक तत्व। वैज्ञानिक तत्वों ने नियमों का निर्माण किया हैं। मनोवैज्ञानिक तत्वों का संबंध मानव प्रतिक्रिया से है, और सौंदर्य मूलक तत्व का संबंध आंनद से हैं इन्ही तत्वों को 'सत्यं शिवं सुन्दरं' से जोड़ा गया है और यही तत्व सत् चित् व आनंद का स्वरूप है।

प्रमुख शैलियाँ

ध्रुपद-धमार भारतीय संगीत का आधारभूत तत्व हैं। ध्रुपद शब्द ध्रुव+पद से मिलकर बना हैं। ध्रुव अर्थात 'स्थिर' तथा 'पद' अर्थात् नियत अक्षरों से बद्ध रचना। भरत ने अक्षर संबंधी प्रत्येक वस्तु को पद कहा है।[1]

उसके दो प्रकार हैं। निबद्ध और अनिबद्ध।[2]

उसके अन्य दो प्रकार ''संताल'' और ''अताल'' भी है।[3]

वेद-वर्णित झंटुं, जगतिय, वलितक, दिग-दिग तथा तराना आदि गीत रचनायें अर्थहीन होते हुए भी पद की परिधि में आते हैं। प्रस्तुत कथन का तात्पर्य यह है कि अर्थ, भाव और रस का बोध पद से होता है।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में निबद्ध गायन शैली के अंतर्गत काव्य की अर्थपूर्ण और भाव पूर्ण रचना, जो किसी ताल में शास्त्रोक्त तरीके से लय बद्ध हो, ऐसी रचना को बंदिश कहा जा सकता है।

* अतिथि प्रवक्ता, शासकीय गृहविज्ञान महाविद्यालय होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

कहा जाता है कि ध्रुव पद-गायन का आविष्कार पन्द्रहवी शताब्दी में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर द्वारा हुआ था। उन्होने स्वयं भी कुछ ध्रुव पदों की रचना की थी। प्राचीन काल में ध्रुव पद में संस्कृत-श्लोकों को गाकर हमारे ऋषि-मुनि भगवान की आराधना करते थे। वर्तमान समय में भी ध्रुवपद एक गंभीर और जोरदार गाना माना जाता है। ध्रुवपद के गीत प्रायः हिन्दी, उर्दू एवं ब्रजभाषा में मिलते हैं। यह मर्दानी आवाज का गायन है। इसमें वीर, श्रृंगार और शांत रस प्रधान है। ध्रुवपद में स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग, ये चार भाग है। ध्रुवपद अधिकतर चौताल, सुलफाक, झंपा, तीव्रा, ब्रम्हताल, रूद्रताल इत्यादि तालों में गाए जाते हैं। प्राचीन काल में ध्रुवपद गायकों को कलावंत कहते थे। धीरे-धीरे ध्रुवपद-गायको के भेद उनकी चार वाणियों के अनुसार किये जाने लगे।

उन चार वाणियों के नाम इस प्रकार है; 1. गोबरहार वाणी अथवा शुद्ध वाणी। 2. खंडहार वाणी। 3. डागुर वाणी। 4. नौहार वाणी।

अकबर बादशाह के दरबार में उस समय चार महागुणी रहते थे - 1. तानसेन, 2. ब्रजचन्द ब्राम्हण, 3. राजा समोखन सिंह वीणाकर, 4. श्री चंद राजपूत।[4]

चार वाणियों के प्रधान लक्षण :

गोबरहार-वाणी; इसका प्रधान लक्षण प्रसाद गुण है, यह शांत रसोद्दीपक है और इसकी गति धीर है।

खंडहार-वाणी; वैचित्र्य और ऐंश्वर्य-प्रकाश खंडहार-वाणी की विशेषताएँ है। यह तीव्र रसोद्दीपक है। गोबरहार-वाणी की अपेक्षा इसमें वेग और तरंगे अधिक होती हैं, किन्तु इसकी गति अति विलंबित नहीं होती।

डागुर-वाणी; इसका प्रधान गुण है सरलता और लालित्य। इसकी गति सहज व सरल है। इसमे स्वरों का टेढा और विचित्र काम दिखाया जाता है।

नोहार वाणी; नोहार रीति से सिह की गति का बोध होता है। एक स्वर से दो तीन स्वरों का लंधन करके परवर्ती स्वर में पहुँचना इसका लक्षण है।[5]

ध्रुवपदों का शिल्प-विधान तथा साहित्य-मूल्यांकन, आचार्य बृहस्पति ने अपनी पुस्तक 'ध्रुवपद और उसका विकास में किया है तथा उन्होने स्तुति, इस्लाम प्रशंसा, वैराग्य, गुरूमहिमा, कृष्णा संबंधी रचनायें, ऋतु-वर्णन, संगीत, नख शिख वर्णन, नेत्र वर्णन, दंपत्ति-केलि, नायिका-भेद आदि शीर्षकों के अंतर्गत प्रसिद्ध तथा अज्ञात रचनाकारों की रचनाओं का उत्कृष्ट संकलन व विश्लेषण किया है यह देखकर ज्ञात होता है कि ध्रुवपदों का साहित्य-पक्ष अतीव उत्कृष्ट एवं प्रौढ है।

राजा मानसिंह तोमर, सुल्तान हुसैन शाह शर्की, बाज बहादुर, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, इब्राहिम, आदिलशाह, औरंगजेब, मुहम्मद शाह रंगीले, शाह अलम, राजा छत्रसिंह आदि शासक ध्रुवपदकारों के महान आश्रयदाता तथा स्वयं भी उत्कृष्ट रचनाकार रहे हैं।

गोपाल नायक, नायक बैजू, नायक बक्शू, गोपाल, रामदास, तानसेन, चरजू, बैजनाथ, चचंलसस, इंछाबरस, हरिदास डागुर, गंग लाल खां, तान तरंग सूरदास, जगन्नाथ, सदारंग, अदारंग, नूररंग, मनरंग, गुलाब, प्रेमदास, बैजू-बावरा, विलास खाँ आदि ध्रुवपदकारों की रचनाओं पर साहित्य संबंधी शोध की भारी संभावनायें हैं। इन सभी की रचनायें ध्रुपद के विभिन्न घरानों में गाई जाती हैं।

ध्रुपद

स्थायी : महाकाल महादेव/ धूर्जटिशूली पंचवदन,/ प्रसन्न नेत्र।।
अंतरा : परमेश्वर परात्पर,/ महायोगी महेश्वर,/ परम पुरूष, प्रेममय/ पराशांति दाता।।
संचारी : सरिता गन भिन्न-भिन्न,/ पंथ जैसे आवत सिंधु,/ पाई रहत मगन।।
आभोग : 'तानसेन' कहे जैसे भगत,/ भिन्न-भिन्न धरमन उपासती,/ एक ही ब्रम्ह पावत।।[6]

यह ध्रुपद ''तानसेन'' द्वारा रचित हैं।

डागर परम्परा के गायक श्री 'गुंदेचा' बंधुओं द्वारा यह बिहाग राग में 'आदिताल' में निबद्ध किया गया है

ध्रुपद-चौताल

बंसीधर, पिनाकधर, गिरिवरधर, गंगाधर,/ चंद्रमा, ललाटधर हो हरिहर। सुधाधर, विषधर, धरनीधर, शेषधर/ चंक्रधर, त्रिशूल धर, नरहरि, शिवशंकर। रमाधर, उमाधर, मुकुटधर, जटाधर,/ भस्मधर, कुंकुमधर, पीताम्बरधर, व्याघ्राम्बरधर। नंदीधर, गरूड़ धर, कैलासधर वैकुंठधर/ कहे 'बैजू बावरे सुनो हो गुनीजन,/ निसदिन हरिहर ध्यान उर धर रे।[7]

एक पद मुल्तानी राग में गाया जाता है यह पद बैजू का है तथा विष्णु और शंकर के लिए सुंदर विशेषणों का प्रयोग किया गया है। धर शब्द की आवृति से अलग ही छटा बन गई है।

ध्रुपद-चौताल

स्थायी : एक समय राधिका,/ मुखना बनाए अंग/ चली श्याम जू के संग
अंतरा : कर सिंगार रूप बनो,/ तिहारे मुख को, देख के स्वरूप को/ चंद्र हूँ लजाय रहै।।[8]

डागर परम्परा में गाया जाने वाला यह ध्रुपद राग जैजैवंती में निबद्ध है। एवं इसका ताल चौताल है।

ध्रुपद-सूलताल

स्थायी : नाद पर ब्रह्म अपरम्पार जाने गुनिजन गुन की साकार
अंतरा : नाद ही जगत आधार नाद सकल सृष्टि नाद साकार।।

श्री गुंदेचा बंधुओं द्वारा रचित ताल सूल ताल में राग पटदीप की रचना है।[9]

धमार

राग-श्याम कल्याण

स्थायी : आज ब्रज में उड़त गुलाल/ गोपीसंग खेले होरी, नंद के लाल।
अंतरा : केसर रंग की/ भर-भर मारत पिचकारी, गोपाल।।[10]

धमार

राग-चन्द्रकौंस

स्थायी : चलो सखि ब्रज में धूम मची,/ होरी खेलत नंदलाल।।
अंतरा : ग्वाल बाल सब रंग में,/ भिगोई मुख पर मलत गुलाल।।[11]

उपरोक्त, डागर परम्परा में गाये जाने वाले प्रचलित धमार है।

''खयाल''

''खयाल'' का अर्थ है - विचार या कल्पना। राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी इच्छा या कल्पना से विविध आलाप -तानों का विस्तार करते हुए एकताल, त्रिताल, झूमरा, आड़ा चौताल इत्यादि तालों में गाते हैं। खयालों के गीतों में श्रृंगार-रस का प्रयोग अधिक पाया जाता है। खयाल की गायकी में जलद् तान गिटकरी इत्यादि का प्रयोग शोभा देता है और स्वर वैचित्र्य तथा चमत्कार पैदा करने के लिए खयालों में तरह-तरह की ताने ली जाती है। खयाल-गायन में ध्रुवपद जैसी गंभीरता और भक्ति-रस की शुद्धता नहीं पाई जाती।

खयाल दो प्रकार के होते है - 1. जो विलंबित लय मे गाए जाते हैं, उन्हें 'बहुधा' 'बड़े; खयाल कहते हैं। 2. जो द्रुत लय में गाए जाते हैं, उन्हें छोटे खयाल कहते हैं।

गायक जब खयाल गाना आरंभ करता है तो पहले विलंबित लय में बड़ा खयाल गाता है जिसे प्रायः विलंबित एकताल, तीनताल, झूमरा आड़ा चौताल इत्यादि में गाया जाता है। फिर इसके बाद ही छोटा खयाल मध्य या द्रुत लय में। मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले (सन् 1798) के दरबार में प्रसिद्ध गायक सदारंग (न्यामत खॉ) और अदारंग ने हजारों खयाल रचकर अपने शिष्यों को सिखाए, किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि उन्होंने अपने वंशजों को एक भी खयाल नहीं सिखाया और न गाने दिया। रामपुर के बजीर खॉ सदारंग के ही वंशज मुहम्मदअली खॉ तानसेन के वंशज थे। वे दोनों ही ध्रुवपद गायक थे, खयाल गायक नहीं।[12]

छोटा खयाल-मध्यलय (त्रिताल)

स्थायी : अब मोरी बात,/ मान ले पियरवा/ जाऊँ तो पे वारी-वारी-वारी-वारी।
अंतरा : 'प्रेम पिया' हम से नाही बोलत/ विनती करत मै तो हारी-हारी-हारी।।[13]

उ. फैयाज खॉ द्वारा रचित यह रचना त्रिताल में निबद्ध है।
'प्रेमपिया' उपनाम से वे अपनी रचनायें लिखते थे। यह अत्यंत प्रचलित बंदिश है।

राग भटियार (विलंबित) - एकताल

स्थायी : सजन बिनारी मॉई कौन, सुने दुःख की बतियाँ।
अंतरा : दरस बिना व्याकुल मोरे नैना,/ 'रामरंग' बिना भारी भई रतियाँ।।[14]

यह रचना पं. रामाश्रय झॉ 'रामरंग' जी की है। जो विलंबित एकताल (बडा खयाल) में निबद्ध है।

इसी तरह हमारे भारतीय सांगीतिक धरानों के हजारों ध्रुपद एवं खयाल की बंदिशे गायी-बजायी जाती है। जो हमारे लिए अमूल्य धरोहर के रूप में है। मैं उन रचनाकारों, वाग्गेयकारों को धन्यवाद देना चाहती हूँ जिन्होंने अप्रतिम रचनायें, रचकर हमारे जैसे संगीत विद्यार्थियों के लिए पूर्व में ही उपलब्ध कर रखी है। जो हमारे देश के लिए सांस्कृतिक पूंजी के रूप है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1]नाट्य शास्त्र, बड़ौदा संस्करण, पृष्ठ संख्या 535
[2]वही, पृष्ठ संख्या 535
[3]वही, पृष्ठ संख्या 535
[4]संगीत विशारद -प्रभु लाल गर्ग 'बसंत', पृष्ठ संख्या 232-233
[5]वही, पृष्ठ संख्या 233-234
[6]श्री गुंदेचा बंधुओं से प्राप्त पद
[7]उस्ताद जिया फरीदुद्दीन डागर जी से प्राप्त पद
[8]श्री गुंदेचा बंधुओं से प्राप्त पद
[9]वही
[10]उस्ताद जिया फरीदुद्दीन डागर जी से प्राप्त पद
[11]वही
[12]सगीत विशारद, प्रभुलाल गर्ग वसंत, पृष्ठ संख्या 235
[13]अभिनव गीतांजली, भाग -1, पं.रामाश्रय झा, पृष्ठ संख्या 118
[14]वही, पृष्ठ संख्या 46

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,45-47
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 25 सितम्बर 2016

स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा प्रस्तावित मानव धर्म

डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा प्रस्तावित मानव धर्म* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार अग्निहोत्री* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

स्वामी विवेकानन्द का मानना है कि उपनिषदों का उपदेश है कि सभी आत्माएँ एक हैं क्योंकि वे सबकी एक ही परब्रह्म के असंख्य प्रतिबिम्ब मात्र हैं। अतएव सच्ची ईशोपासना यह है कि हम अपने मानव बन्धुओं की सेवा में अपने आपको लगा दें और उन्होंने स्पष्ट किया कि मानव को मानव समझना और उसे ईश्वर समझकर उसकी सेवा करना ही सच्चा धर्म है।

स्वामी विवेकानन्द जी मानव-धर्म को परिभाषित करते हुए कहा है कि, ''ईश्वर सम्बन्धी सभी सिद्धान्त सगुण, निर्गुण, अनन्त, नैतिक नियम अथवा आदर्श मानव धर्म की परिभाषा के अन्तर्गत आने चाहिए।''

स्वामी विवेकानन्द जी के विचार में जीवन का प्रथम लक्ष्य ज्ञान है और द्वितीय सुख। ज्ञान तथा सुख मुक्ति की ओर ले जाते हैं परन्तु जब तक प्रत्येक प्राणी मुक्ति नहीं प्राप्त कर लेता, तब तक कोई भी व्यक्ति सुख नहीं प्राप्त कर सकता। जब तक प्रत्येक व्यक्ति सुखी नहीं हो जाते, तब तक सम्पूर्ण समाज सुखी नहीं हो सकता। आत्म-प्रतिष्ठान नहीं बल्कि आत्म-त्याग ही सर्वोच्च लोक का धर्म होता है। धर्म की उत्पत्ति प्रखर आत्म-त्याग से ही होती है। अपने लिए कुछ भी मत चाहो, सब दूसरे के लिए ही करो, यही सच्चा मानव धर्म है। स्वामी विवेकानन्द जी का मानना है कि वेदांत दर्शन भी है और धर्म भी। वास्तव में वह मानव-धर्म को स्थापित करने के लिए सबसे अधिक उपर्युक्त आधार है। स्वामी विवेकानन्द वेदान्त धर्म के विषय में जो भी विचार व्यक्त किये हैं वह मानव धर्म की धारणा को प्रस्तुत करता है। प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार वे धर्म को मानव समाज का आधार मानते थे। उनका विचार था कि धर्म के अभाव में समाज चल ही नहीं सकता। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द भारत को धर्म पर आधारित करना चाहते थे किन्तु वह धर्म किसी मत का न होकर मानव धर्म का हो। जैसे कि स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है, ''धर्म का अर्थ न गिरजे में जाना है न ललाट रंगना है, न विचित्र ढंग का भेष धारण करना।

* एस. एस. खन्ना महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : agni.mkumar@yahoo.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

इन्द्रधनुष के सब रंगों से तुम अपने को चाहे भले ही रंग लो, किन्तु यदि तुम्हारा हृदय उन्मुक्त नहीं हुआ है, यदि तुमने ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किया है, तब यह सब व्यर्थ है जिसने हृदय को रंग लिया है, उसके लिए दूसरे रंग की आवश्यकता नहीं। यही धर्म का सच्चा अनुभव है।''

समाज में धर्म के महत्व को स्पष्ट करते हुए स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है कि समाज के पीछे एकमात्र, पूर्वशक्ति, सम्पूर्ण मान्यता बाँधने वाली सम्पूर्ण शक्ति एक ओर केवल एक है अर्थात् धर्म, आध्यात्मिकता, परलोकवाद। वास्तव में समाज को आर्थिक कल्याण और भौतिक सुख अवश्य ही प्रदान करने चाहिए। परन्तु अन्तिम लक्ष्य, जैसा कि अन्य सब कहीं है, आत्म का विकास और पूर्णता है - चाहे उसके कुछ भी अर्थ हो''। यह आत्मा मनुष्य के अन्तर्गत मानवता ही है। इसीलिए मानव जीवन का एक मात्र लक्ष्य मानवता का साक्षात्कार ही है। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द जी ने स्पष्ट किया है- ''जीवों में मनुष्य ही सर्वोच्च जीव है और यह लोक ही सर्वोच्च लोक है। ईश्वर का मनुष्य की अपेक्षा बड़ा समझकर हम उनकी कल्पना नहीं कर पाते, इसीलिए हमारा ईश्वर भी मानव है और मानव भी ईश्वर है।'' इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द जी ने अपनी धर्म की धारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि - ''हिन्दुओं ने अपना धर्म वेदों से अनावरण के द्वारा प्राप्त किया है। वे मानते हैं कि वेद आरम्भ और अन्तहीन है। यह श्रोतागणों को हास्यास्पद प्रतीत हो सकता है कि कोई पुस्तक आरम्भ और अन्त के बिना कैसे हो सकती है किन्तु वेदों से पुस्तकों का तात्पर्य नहीं है। वे विभिन्न कालों में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा खोजे गये आध्यात्मिक नियमों के संचित भण्डार हैं।''

स्वामी विवेकानन्द जी ने मानववादी धर्म की धारणा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि- ''प्रत्येक सम्प्रदाय जिस भाव से ईश्वर की आराधना करता है, मैं उनमें से प्रत्येक के साथ ही ठीक उसी भाव से आराधना करूँगा। मैं मुसलमानों के साथ मस्जिद में जाऊँगा, ईसाइयों के साथ गिरजे में जाकर क्रूसित ईसा के सामने टेकूँगा, बौद्धों के मन्दिर में प्रवेश कर बुद्ध और संघ की शरण लूँगा और अरण्य में जाकर हिन्दुओ के पास बैठ ध्यान में निमग्न हो, उनकी भाँति सबके हृदय को उद्भासित करने वाली ज्योति के दर्शन करने में सचेष्ट होऊँगा। मैं केवल इतना ही नहीं, जो पीछे आयेंगे, उनके लिए भी मैं अपना हृदय उन्मुक्त रखूँगा। क्या ईश्वर की पुस्तक समाप्त हो गयी? अथवा अभी भी वह क्रमशः प्रकाशित हो रही है? संसार की यह आध्यात्मिक अनुभूति एक अद्भुत पुस्तक है। बाइबिल वेद कुरान तथा अन्यान्य धर्मग्रन्थ समूह मानों उसी पुस्तक का एक-एक पृष्ठ है और उसके असंख्य पृष्ठ अभी भी अप्रकाशित हैं। मेरा हृदय उन सबके लिए उन्मुक्त रहेगा। हम वर्तमान में तो हैं ही, किन्तु अनन्त भविष्य की भावराशि ग्रहण करने के लिए भी हमको प्रस्तुत रहना पड़ेगा। अतीत में जो कुछ भी हुआ है, वह सब ग्रहण करेंगे, वर्तमान ज्ञान-ज्योति का उपयोग करेंगे और भविष्य में उपस्थित रखेंगे। अतीत के ऋषिकुल को प्रमाण, वर्तमान के महापुरूषों को प्रमाण और उन सबको भी प्रणाम जो भविष्य में आने वाले हैं।''

स्वामी विवेकानन्द जी के उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि संसार के सभी धर्म एक मूल मानव धर्म की अभिव्यक्ति है। सभी पैगम्बरों ने अनेकों प्रकार से उसी एक मूल मानव धर्म का उपदेश दिया है और सभी धार्मिक पुस्तकें उसी की व्याख्या करती हैं। यह मानवधर्म सदैव प्रगतिशील है जो सदैव बढ़ता ही जाता है व संशोधित होता जाता है। इसको किसी देश काल में बाँधा नहीं जा सकता। शिकागो विश्व धर्म, महासभा में स्वामी विवेकानन्द जी ने ईसाइयों के समक्ष कहा था कि- ''आप ईसाई लोग जो मूर्ति पूजकों की आत्मा का उद्धार करने के निमित्त अपने धर्म प्रचारकों को भेजने के लिए इतने उत्सुक रहते हैं, उनके शरीर को भूख से मर जाने से बचाने के लिए कुछ क्यों करते? भारतवर्ष में जब भयानक अकाल पड़ा था तो सहस्त्रों और लाखों हिन्दू क्षुधा से पीड़ित होकर मर गये, पर आप ईसाइयों ने उनके लिए कुछ नहीं किया। आप लोग सारे हिन्दुस्तान में गिरजे घर बनाते हैं पर पूर्व का प्रधान अभाव धर्म नहीं है, उनके पास धर्म पर्याप्त है - जलते हुए हिन्दुस्तान के लाखों दुःखार्त भूखे लोग सूखे गले से रोटी के लिए चिल्ला रहे है। वे हमसे रोटी मांगते हैं और हम उन्हें देते हैं पत्थर। क्षुधार्थों को धर्म का उपदेश देना तथा भूखों को दर्शन सिखाना उनका अपमान करना है।''

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मजूमदार, श्री सत्येन्द्र नाथ -*विवेकानन्द चरित्र,* रामकृष्ण मठ, नागपुर
विवेकानन्द साहित्य - अद्वैत आश्रम मायावती अल्मोड़ा जन्मशती संस्कार
विवेकानन्द स्वामी - कर्मयोग, रामकृष्ण मठ, धन्तोली नागपुर
पाण्डेय, राम सकल -विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
अन्वेशिका - रेडियन जर्नल आफ टीचर एजूकेशन।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,48-52
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 29 सितम्बर 2016

भक्तिकाल में नारी विषयक दृष्टिकोण

श्रीमती पूनम आर्या*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भक्तिकाल में नारी विषयक दृष्टिकोण* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *श्रीमती पूनम आर्या* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

शोधलेखसार

सन् 1375 से लेकर 1700 तक दीर्घकाल हिंदी साहित्य में भक्तिकाल एवं हिंदी का स्वर्णकाल युग कहलाता है। भक्तिकाल तनी हुई राजनीतिक एवं समाज की मानसिक परिस्थिति के कारण भक्ति में तल्लीन दिखाई देता है। भक्तिमार्ग के कुछ अंशो में वैराग्य आवश्यक रहता है। साधना या ज्ञानमार्गी के कुछ भक्तों ने तो नारी से नफरत की और पलायन थी किया। और कुछों ने नारी के चरित्रिक गुणों पर भी दृष्टि डाली तो उसके गुणों का व्याख्यान भी किया। तुलसी ने सीता वर्णन बड़ा सजीव और सुन्दर किया है लेकिन उनका दृष्टिकोण भी नारी के कुछ खास अच्छा नहीं है। भक्तिकाल के कवि माता और देवी के रूप में नारी का गुणगान करते है जैसे अपने आराध्य युगल रामलीला रामसीता, राधाकृष्ण, शिवपार्वती। और कुछ कवि नारी का दैहिक आकर्षण अपनी साधना में बाधक समझते है। विषयवासनायें रखनेवाली नारी को वे निदंनीय और भक्तिमय नारी को वेदनीय मानते है। भक्तिकाल में नारी विविध संदर्भो में मिलती है। समाज, परिवार, माता बहन पत्नी, बहु, सास इन रूपों में नारी तब से लेकर आज तक मिलती है।

मुख्य शब्द- पतिव्रता, आदर्श नारी, नारी, माया, ठगनी

किसी साहित्य के संदर्भ में भक्तिकाल से तात्पर्य उस काल से हैं, जिसमें मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणाम स्वरूप भक्ति आन्दोलन का सुत्रपात हुआ था, और उसकी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे-धीरे लोक प्रचलित भाषायें भक्ति भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती गयी और कालांतर में भक्ति विषयक विपुल साहित्य की बाढ़ सी आ गयी, किन्तु यह भावना वैष्णव धर्म तक ही सीमित न थी अपितु शैव शाक्त आदि धर्मो के अतिरिक्त बौद्व और जैन संप्रदाय तक इस प्रवाह से प्रभावित हुए बिना न रह सकें। आदिकाल की कविता राज्याश्रित कवियॉ की देन थी। लेकिन ईसा की 14 वी शताब्दी से पूर्व ही हिन्दी काव्य धारा में एक नवीन परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। कवियों ने राज्यश्रय की चिन्ता से मुक्त होकर ईश्वर के प्रति अपनी इच्छा एवं आस्था की भावनाओं को व्यक्त करने का प्रयास किया, भागवत धर्म के प्रचार और प्रसार के फलस्वरूप

* शोध छात्रा, डी. एस. बी. परिसर, नैनीताल (उत्तराखण्ड) भारत। E-mail : ppoonam782@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात होने लगा और आगे चलकर हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के नाम से जाना जाने लगा। इस काल में सांस्कृतिक चेतना की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति चिन्तन धारा के माध्यम से हुई। साहित्य कला संगीत और शिल्प इनकी अनुशागिंक उपलब्धियॉ है। भक्ति युगीन साहित्य पर नाथसिद्धो, पुराण, महाभारत और रामायण का अत्याधिक प्रभाव पड़ा भक्त कवियों ने अपनी भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति ब्रज तथा अवधि के रूप में की है। नरी को लेकर इस काल में अनेक भ्रामक कल्पनाएँ समाज में रूढ हो गई। एक ओर सन्त कवियों ने पतिव्रता नारी को देवी के रूप मे पूजा तो दूसरी ओर उसे माया के रूप में प्रस्तुत किया।

साहित्य समाज का दर्पण है, उक्ति की तरह साहित्य और समाज का गहरा संबन्ध है, समाज में प्रचालित धारणाओं का साहित्य पर गहरा परिणाम दिखाई देता है। समाज में नारी का स्थान और सिथिति को साहित्य में सटिकता से उजागर करता है। हिन्दी साहित्य ने अपने आरंभिक अवस्था से लेकर आज तक नारी के अवला से सवला बनने तक के प्रवाल को हिन्दी साहित्य ने बड़ी सटिकता से चित्रित किया है। आदिकाल से लेकर आज तक नारी को केन्द्र में रखकर उसके सशक्त रूप को यथार्थ रूप में उजागर किया है। प्राचीन पुरूष प्रधान में स्त्री का निरंतर शोषण होता रहा है। स्त्री को अपने ही देश में शूद्र की श्रेणी में रखा गया है। इतिहास इस बात का साक्षी हमेशा से ही रहा है। कि स्त्री को जीवन में अनेक उतार-चढाव का सामना, स्वयं स्त्री को ही करना पड़ता है। वैदिक काल में पुरूष और स्त्री को समान रूप से स्वतंत्रता प्राप्त थी। सूत्रकाल में नारी के प्रति समाज की बदलती अवधारणा का चिन्तण मनुस्मृति के द्वारा जाना जा सकता है। जिसमें मनु ने स्त्री की गरिमा को मानते हुए कहा- ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'' एवं ''यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रियाः।''[1]

जिस घर में नारी का सम्मान होता है वहा देवता निवास करते हैं। प्राचीन वैदिक काल में नारी सम्बन्धी धारणा शुद्ध एवं पूज्यनीय थी, वेदों में नारी सम्बन्धी जो मान्यताएँ है वह गौरवशाली एवं महत्वपूर्ण हैं। वैदिक युग के पश्चात नारी का स्थान निम्न होता गया। पूर्व मध्यकाल में नारी सम्बन्धी जो अवधारणा प्रचालित थी उस पर भी संक्षेप में कह सकते हैं कि मध्यकाल में सन्तो ने नारी को एक ओर तो प्रशंसनीय एवं जगतजननी कहा, तो दूसरी ओर उसकी निन्दा की है। भक्तिकाल में नारी को लेकर इस समय अनेक भ्रामक कल्पनाएँ समाज में रूढ़ हो गयी, एक ओर सन्त कवियों ने पतिव्रता नारी को देवी के रूप में पूजा तो दूसरी ओर उसे माया के रूप में प्रस्तुत किय। निर्गुण भक्ति साहित्य में कवियों ने नारी का वास्तविक चित्रण नहीं किया। निर्गुणियों ने अपनी रचनाओं में नारी के रूप लावण्य की निंदा करके सदा उससे बचते रहने का उपदेश दिया है। उनका प्रेमवर्णन अत्यन्त सूक्ष्म तथा संकेतात्मक है, स्पष्ट है कि लोक जीवन पर व्यवहार पक्ष में अभिव्यक्त भावों का ही अधिक प्रभाव पड़ता है। इस युग में नारी भावना का केन्द्र बिन्दु केवल उसका मादक एवं निन्दनीय कामिनी रूप ही रहा कबीर नारी को ठगिनी, रंगीली, मतवाली, और अल्हड़ नारी के रूप में अंकित करते हैं। कबीर का अनुभव है कि संसार में बॉधने का सबसे बड़ा जाल नारी है इसलिए उन्हें नारी माया रूप में अधिक दिखाई देती है।

''कबीर माया मोहनी, मोहि जांण सुजाण,/ भागॉकी छूटें नहीं, भरि भरि मारै बॉण।''[2]

कबीरदास ने नारी की एक ओर निंदा की है तो दूसरी ओर पतिव्रता नारी का गुणगान भी किया है।

''पतिव्रता मौलि भलि, कालि कुचित कुरूप/ प्रतिव्रता के रूप पर वारों कोटि स्वरूप।''[3]

कबीरदास की तरह निर्गण संत कति सूरदास ने भी पतिव्रता का पालन करने वाली स्त्रियों को सम्मान पूर्वक देखा है। निर्गुण संत कवियों में कबीर, नानक, दादू, मलूकदात आदि कवियॉ ने नारी को माया के रूप में देखते हुए पतिब्रता नरी को देवी के रूप में भी पूजा है।

सूफी सम्प्रदाय ने नारी को विविध रूपों में चित्रित किया है। सूफी सम्प्रदाय मूलतः वैराग्यमूलक होने के कारण नारी की उपेक्षा की ओर सबने उसका दुर्गुण की खान के रूप में बखान किया है, भारतीय संतों में ज्ञान और ज्ञेय की चरम परिणति ज्ञानमय है, तो सूफी सन्तों में प्रेमी और प्रिय चरम परिणति प्रेममय है। सूफी साधकों में जिन कवियों ने हिन्दी साहित्य की वेदी पर अपनी सुमनांजाति अर्पित की वे सभी इस्लाम की शास्त्रीय मर्यादा के विश्वासी थे। जायसी के ग्रन्थ पद्मावत महाकाव्य में नारी का विविध रूप में चित्रण हुआ है। पद्मावत में नागमती का जो विरह वर्णन आया है वह विरह काव्य की चिरन्तन धरोहर बन गई है। पद्मावत के बारह मासा वर्णन में जो विरह आया वह अनूठा है।

''सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी है बिरवझुरानी। लाग पुनरबसु पीउ न देखा। भइ बाउरि कहै कन्त सरेखा। रकत कै ऑसु परै भुइँ दूही। रोंगि चली जनु बीर बहूटी।''[4]

नागमती का विरह वर्णन नारी की मनोदशा का वर्णन करता है। विरहा की यह मनोदशा नागमती को मानवता के समीप लाकर बिठा देती है। सूफी साहित्य में नारी के सुन्दरता का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन हुआ है। पद्मावत में पद्मावती का चित्रण इस प्रकार हुआ है।

''सरवर तीर पद्मिनी आई/ खोंपा छोरि केस मुकलाई/ ससि मुख, अंग मलयगिरि बासा/ नागिन झॉप लीन्ह चहुँ पासा।''[5]

सूफी कवि उस्मान द्वारा रचित ''चित्रावली'' में नारी का साहसी रूप प्रेमिका रूप, ज्ञानी रूप, पतिव्रता रूप की 'चित्रावली' और अन्य स्त्री पात्रों के माध्यम से उतारा है। भक्तिकाल में निर्गुण धारा मैं जहॉ नारी को माया कहा गया वही उसे परमशक्ति के रूप में भी देखा गया, ''आलौकिक रूप में वह परमशक्ति, ज्योति, साधकी, उपासना और भक्ति का पात्र है। लौकिक दृष्टि से वह पुरूष की प्रेयसी और पत्नी है। गृह के कर्मक्षेत्र विविध पारिवारिक संबंधो में उसके सत् एवं असत् रूप की व्यंजना हुई है। ''राम, कृष्ण हिमालय और गंगा भारतीय जीवन में इस तरफ व्याप्त है कि उनसे इस देश की अस्मिता पहचानी जाती है। सगुण भक्ति धारा के अंतर्गत जो रामकाव्य परम्परा है, जिसने नारी को प्रतिष्ठा देने का प्रयास किया है। तुलसीदास के रामचरित मानस में नारी के आदर्श रूप को उजागर किया है। इस महाकाव्य में नारी को आदर्श माता, आदर्श पत्नी के रूप में चित्रित किया है। तुलसीदास के रामचरित मानस एक अनूठा महाकाव्य है। रामकाव्य परम्परा में तुलसीदास, नाभादास, स्वामी अग्रदास आदि के नाम लिये जाते है। तुलसी के काव्य में नारी का चित्रण माता, बहन, प्रेयसी एवं पत्नी के रूप में दिखाई देता है। तारका की गणना तुलसी के नारी पात्रों में की जाती है। तुलसी के मानस गीतावली, जानकी मंगल आदि काव्य पदों में तारका का चित्रण है जिसकी गणना तुलसी के नारी पात्रों से की जाती है।

''चले जात मुनि दीन्हि देखाई/ सुनि ताड़का क्रोध करि धाई/ एकहि बान प्रान हरि लीन्हा/ दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।''[6]

इन पदों में जो ताड़का शब्द दिखाई देता है वह नारी पात्रों से सम्बन्धित है। तुलसीदास ने ताड़का को दीन कहा है यहॉ तुलसी ने नारी के प्रति सहानुभूति दिखाकर अपनी उदार - भावना का परिचय दिया है। भरत राम विरोधी माता के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण अपने को महान पातकी बताते हैं। वह अपनी जननी की भर्त्सना करते हैं। उसे कुमाता बताते हैं यह भारतीय आदर्शो के अनुकूल नहीं है। तुलसी ने भरत द्वारा तथा समाज के अन्य स्त्री - पुरूषों द्वारा कैकेयी के इस आचरण की स्थान स्थान पर भर्त्सना करायी है। अंत में तुलसी ने कैकेयी से अपने दुष्कृत्य पर पश्चाताप कराते हुए ग्लानि और लज्जा से उसके हृदय की निर्मलता का अंकन किया है। तुलसीदास ने जहॉ नारी के निर्दनिय एवं अप्रशंसनिय रूपों का चित्रण किया है वहाँ नारी के उदान्त एवं प्रशंसनीय रूपों का चित्रण कौशल्या माता के रूप में उजागर किया है। तुलसीदास ने पतिभक्त नारी एवं अपने सौत के प्रति सद्भाव रखने वाली स्त्री को चित्रित करते हुए आदर्श स्थापित किया है। सीता पतिव्रता नारी का आदर्श रूप है। तुलसी ने आज्ञाधारक एवं पतिव्रता नारी का चित्रण किया है। तुलसी ने सीता को आज्ञाचारक, विनयशील, गुणवती, सौदर्यवटी एवं जीवनसंगिनी और दुःखों में सुख का अनुभव करने वाली स्त्री के रूप में चित्रित किया है। सीता और कौशल्या का चित्रांकन इसलिए सुंदर हुआ है कि वह तुलसी के अराध्य की प्रेयसी और माता है। अतः वह दूसरे रूप में भी तो चित्रित नहीं कर सकता था।

कृष्णकाव्य में भी नारी के विविध रूपों का चित्रण हुआ है। कृष्ण काव्य हिन्दी साहित्य का एक अनमोल पहलू है। कृष्ण काव्य में भगवान श्रीकृष्ण को आराध्य मानकर काव्य रचना की है। कृष्ण काव्य में सूरदास का नाम अग्रगण्य है कृष्ण काव्य में नारी के विविध रूपों की चर्चा प्रारंभी कृष्ण भक्त कवियों ने भी की है। निम्बार्क संप्रदाय ने नारी को आदिशक्ति के रूप में देखा है। और पुरूषतत्व से उसकी अभिन्नता प्रतिपादित की है। कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी उपासना पद्धति के अनुकूल प्रायः स्फुट मुक्तकों की रचना की है। सूर एवं अष्टछाप के कवियों ने राधा एवं गोपी-कृष्ण लीलाओं का वर्णन उत्कृष्टता से किया है। सूरदास के पहले विद्यापति ने कृष्ण काव्य का श्री गणेश किया है। विद्यापति ने नारी के अंतरंग एवं बाह्यअंग का

चित्रण किया है। विद्यापति ने नायिका के वयःसंधि नखशिख सौंदर्य मान आदि का सुंदर चित्रण किया है। विद्यापति ने राधा के मांसल सौंदर्य का वर्णन किया है विद्यापति ने राधा के अपूर्व सौन्दर्य और अनिर्वचनीय स्नेह का वर्णन किया है।

'कि ओर! नव जीवन अभिरामा/ जतदेखल तत कहए न पारिअ/ छओ अनुपम एक ठामा/ हरित इन्दु अरविन्द करिनि हिय/ पिक वूझल अनुमानी/ नयन वदन परिमल गति तन्दरूचि/ अओ अति सकजित वानी।''[7]

विद्यापति ने नारी के बाह्यांग का चित्रण किया है। नारी के अन्तर्मन को नहीं छुआ। सूरदास कृष्णाकाव्य धारा के प्रमुख कवि है। सूरदास ने राधा रूपी नारी की प्रशंसा की है। नारी को देवी के रूप मै देखते हुए उसके मात्रा को प्रदशित किया है। सूरसागर में गोपियों की विविध प्रेम लीलाओं का इतना अधिक वर्णन है कि इसे स्त्री चरित्र का विभाव काव्य कहा जाए तो अनुचित न होगा। माता के वात्सल्य में तो बेजोड़ है कि प्रेमिका का, पत्नी का, कुमारी का, गृहणी का, गोवर्धन का, परिहास पेशवा का, चुहल करनेवाली का, विरहिणी का, वासव सज्जा का, प्रोषितपतिका का, वह अद्‌भुत स्वाभाविक और सरल चित्रण करता है। सूरदास ने विरह में नारी किस प्रकार तड़पती है इसका चित्रण भ्रमरगीतसार व गोपियों के माध्यम से किया है।

''जाय कवियों स्याम सो या विरह को उत्पात नयनन कछू नाहिं सुझाई/ कछु श्रवन सुनत न बात स्याम बिनु आंसुवन बूड़त दुसह धुनि भूइ बात।''[8]

सूरदास के काव्य में मातृ-हृदय का सुंदर चित्रण हुआ है सूरदास के भ्रमरगीतसार में नारी के विविध रूपों का चित्रण हुआ है वहीं अष्टछाप के कवियों में नारी भावना का श्रृंगारिक भाव व राधा का अद्‌भुत सौन्दर्य इनके काव्य में मिलता है। चतुर्भुजदाज की नारी भावना में भक्ति भावना और श्रृंगार की छटा दिखाई पड़ती हैं। कृष्ण जन्म से लेकर गोपी-विरह तक ब्रजलीला का गान इन्होंने किया है। साथ ही राधा का चित्रण कृष्ण की पत्नी एव प्रेयसी के रुप मै भी किया है कृष्ण दास ने अपने काव्य में राधा कृष्ण के प्रेम -प्रसंग रुपसौंदर्य आदि का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है।

मीराबाई जिसे प्रेम की मूर्ति के रूप में पहचानती है वह कृष्ण भगवान हैं। मीरा का काव्य उनके हृदय से निकले सहज प्रेमोच्छवास का साकार रूप है। उनकी वृत्ति एकांततः और समग्रतः प्रेम - माधुर्य में ही रमी है। मीरा स्वयं नारी है और मीरा ने अपने आप को काव्य में उतारा है। इसलिए मीरा का काव्य नारी मन का दर्पण है। मीरा की पीड़ा को हम नारी पीड़ा की दृष्टि से देख सकते हैं। मीरा युगों से प्रेम से उपासना में लीन नारी का प्रतीक है। जिसने भगवान श्रीकृष्ण को अपना पति मान लिया था। मीरा के हृदय की अभिव्यंजना है। अतः मीरा के इसी अभिव्यक्ति में नारी के विभिन्न रूपों व उसके भावों का दिग्दर्शन होता है। मीरा ने श्रीकृष्ण को अपना पति माना है वह कहती है - ''मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई/ जाके सिर मोर मुकुट, मेरे पति सोई।''[9]

प्रेमोन्मादिनी मीरा का एक - एक पद उनके हृदय की आकुलता का परिचायक है। मीरा के विरह - भावना में नारी - हृदय का परिचय मिलता है।

''बिरहनी बावरी सी भई। ऊँची चढ़ि अपने भवन में टेरट हाय दई/ ले अंचरा मुख अंसुवन पोंछत उधरे गात सही/ मीरा के प्रभु गिरधर नागर विछुरत कछु न कही।''[10]

रसखान एक सहृदय भावुक कवि है। उनका अंतर प्रेमताप की उष्णता से विगलित हो कर मानो विविध भाव सराणियों के रूप में उमड़ पड़ा है। रसखान के एकांतिक प्रेममयी उमंग ने उनके काव्य को रस की खान बना दिया है। रसखान के काव्य में एक ओर तो राधा के विरह - ताप का वर्णन है तो दूसरी ओर मर्यादाशील तथा उदार हृदयवाली गोपियों का चित्रण है।

''बंसी बजावत आनि कढ़ो सो गली मैं अली कुछटोना सो डारे। हेरि चिन्ते, तिरछी करी दृष्टि चली गयों मोहन मूठि सी/ ताही घटी सो परी सेज पै प्यारी न बोलति प्राण हूँ वारे/ राधिका जी है तो जी है सबै न तो पी है हलाहल नन्द के द्वारे।''[11]

नरोत्तदास ने कृष्ण को सोलह सहस्र रानियाँ, उनकी आठ पटरानियाँ और सुदामा की पत्नी का चित्रण किया है। प्रमुख रूप से सुदामा की पत्नी का चित्रण किया गया है। सुदामा की पत्नी की पतिपरायणता वेद की रीति को अपनाने वाली तथा पति के संतापों को हरने वाली पत्नी का सुंदर चित्रण किया गया है।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में नारी का चित्रण विविध रूपों में हुआ है। इस काल में कवियाँ के नारी विषयक दृष्टिकोण में द्वैतमत ही है, एक ओर उसे मुक्ति मार्ग की बाधा मानकर उसकी उपेक्षा की है। तो दूसरी ओर सती-सीता व पार्वती की वन्दना करके उसकी सर्वोपरि गुणों को भी उजागर किया है।

सन्दर्भ

[1]*समकालीन, हिन्दी उपन्यास में स्त्री-विमर्श* -डॉक्टर स्नेहलता, पृष्ठ संख्या 49
[2]*कबीर ग्रन्थावली* -रामकिशोर शर्मा, पृष्ठ संख्या 203
[3]*हिन्दी साहित्यः संक्षिप्त परिचाय* -लक्ष्मण सिंह बिष्ट, पृष्ठ संख्या 60
[4]*जायसी ग्रन्थावली* -(संपादक) श्री राकेश एम0ए0, पृष्ठ संख्या 43
[5]*हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास* -बच्चन सिंह, पृष्ठ संख्या 109
[6]*मानस 1/209/3,* पृष्ठ संख्या 218
[7]*हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास* -डॉक्टर विजयपाल सिंह, पृष्ठ संख्या 140
[8]*मध्यकालीन काव्य* -(संपादक) डॉ0 हरिचरण शर्मा, पृष्ठ संख्या 77
[9]*मीराबाई की पदावली* -(सं) परशुराम चतुर्वेदी, पद-15, पृष्ठ संख्या 98
[10]*हिन्दी साहित्य का इतिहास* -डॉ0 नगेन्द्र एवं डॉ0 हरदयाल, पृष्ठ संख्या 221
[11]*रसखान ग्रन्थवली* -प्रो0 देशराजसिंह भाटी, पद-114, पृष्ठ संख्या 228

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

चतुर्वेदी, परशुराम (प्रकाशित वर्ष 2002) -*मीराबाई की पदावली,* हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
बिष्ट, लक्ष्मण सिंह (संस्करण 1990) -*हिन्दी साहित्य संक्षिप्त परिचाय,* श्याम प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा 26360
डॉ0 नगेन्द्र (2005) -*हिन्दी साहित्य का इतिहास,* मंयूर पेपर बैक्स ए-95, नोएड 201301
भाटी, प्रो0 देशराज सिंह (1998) -*रसखान ग्रन्थावली,* वाणी प्रकाशन
डॉ0 स्नेहलता -*समकालीन हिन्दी उपन्यास में स्त्री-विमर्श,* राज पब्लिकेशन, 108,4655/24, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली
सिंह, बच्चन (2008) -*हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास,* राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा0 लि0 नई दिल्ली
सिंह, डॉ0 विजयपाल (2011) -*हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास,* राधाकृष्णन प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
राकेश -*जायसी ग्रंथावली,* प्रकाशन केन्द्र, सीतापुर रोड, लखनऊ 226020
शर्मा, रामकिशोर (2007) -*कबीर ग्रंथावली,* लोकभारत प्रकाशन, एम0जी0 रोड, इलाहाबाद
शर्मा, डॉ0 हरिचरण -*मध्यकालीन काव्य*
शर्मा, डॉ0 गजानन (1972) -*भक्तिकालीन काव्य में नारी,* रचना प्रकाशन, इलाहाबाद

पत्र-पत्रिकाएँ

आजकल
समीक्षा

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,53-63
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 04 अक्टूबर 2016

मध्यकालीन सम-सामयिक अन्य भारतीय भाषाओं के कवि एवं उनकी रचनाओं पर हिन्दी कवियों की रचनाओं का प्रभाव

डॉ. अंशुमाला मिश्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मध्यकालीन सम-सामयिक अन्य भारतीय भाषाओं के कवि एवं उनकी रचनाओं पर हिन्दी कवियों की रचनाओं का प्रभाव* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंशुमाला मिश्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

मध्यकालीन सम-सामयिक अन्य भारतीय भाषाओं के कवि[1]

बंग्ला कवियों में[2] *:* चण्डीदास, कृतिबास ओझा, ईश्वर चन्द्र गुप्ता, मिशेल मधुसूदन दत्त प्रमुख हैं।

गुजराती कवियों में[3] *:* आखो, भोज भगत, भालम, दयाराम, धीरो, कान्त, मीराबाई, नरसिंह मेहता, प्रेमानंद प्रमुख हैं।

कश्मीरी कवियों में[4] *:* हब्बाखातून, लल्लेश्वरी, महमूदगामी, नूंद रेशी, परमानंद, रशूल मीर, रहमान राही, रूपा भवानी प्रमुख हैं।

मैथिली कवियों में[5] *:* आचार्य रामलोचन शरण, विद्यापति प्रमुख हैं।

मलयालम कवियों में[6] *:* थुनचथुथ रामानुजन एजहूथचन, अरनोष पाथिरी, पूंथनम नाम्बूथिरी, कुंचन नाम्बियार, उन्नायी वारियर, इराइम्मान थंपी प्रमुख हैं।

मराठी कवियों में[7] *:* संत एकनाथ, संत तुकाराम, बहिणाबाई चौधरी प्रमुख हैं।

उड़िया कवियों में[8] *:* कवि सम्राट उपेन्द्र भांजा, फकीर मोहन सेनापति प्रमुख हैं।

राजस्थानी कवियों में[9] *:* सूर्यकमल मिश्रन प्रमुख हैं।

तेलगू कवियों में[10] *:* निम्मलिखित कवियों का नाम उनकी उपाधिनाम क्रम में हैं -अनामचार्य, इराना, मोल्ला, नान्नया, पोताना, तल्लपका, तिरूमलम्मा, वेमना प्रमुख हैं।

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

बंगाली साहित्य[11] *:* पन्द्रहवीं शताब्दी बंगला साहित्य में विद्यापति एवं कवि चण्डीदास की वैश्नव कविता की प्रसिद्धि के लिए जाना जाता है। मध्यकालीन बंगला साहित्य संस्कृत के प्रमुख काव्य रामायण, भागवत, पुराण के अनुवाद के लिए जाना जाता है। 13वीं-18वीं शताब्दी में की गयी मंगलकाव्य की रचना बंगला साहित्य का प्रमुख वृहद कार्य है।

The Bengali translations of two great Sanskrit texts the Ramayana and the Bhagavata Purana played a crucial role in the development of Middle Bengali literature. Maladhar Basu's Sri Krishna Vijaya (Triumph of Lord Krishna), which is chiefly a translation of the 10th and 11th cantos of the Bhagavata Purana, is the earliest Bengali narrative poem that can be assigned to a definite date. Maladhar Basu flourished in the modern-day Bardhaman district of Paschimbanga in the 15th century Composed between 1473 and 1480 C.E., it is also the oldest Bengali narrative poem of the Krishna legend. The Ramayana, under the title of Sri Rama Panchali, more popularly known as the Krittivasi Ramayana, was translated by Krittivas Ojha who belonged to the modern-day Nadia district, Paschimbanga. He also, like Maladhar Basu, flourished in the 15th century. Mangal-Kāvya ("Poems of Benediction"), a group of Hindu narrative poetry, composed more or less between 13th Century and 18th Century, eulogise the indigenous deities of rural Bengal in the social scenario of the Middle Ages. Manasā Mangal, Chandī Mangal and Dharma Mangal, the three major genus of Mangal-Kāvya tradition include the portrayal of the magnitude of Manasā , Chandī and Dharmathakur, who are are considered the greatest among all the native divinities in Bengal, respectively. There are also minor Mangalkāvyas known as Shivāyana, Kālikā Mangal, Rāya Mangal, Shashtī Mangal, Sītalā Mangal and Kamalā Mangal etc. Majore poets of Mangalkavya tradition are Mukundaram Chakrabarty, Bijay Gupta, Rupram Chakrabarty etc

गुजराती साहित्य[12] *:*

प्राग नरसिंह युग : जैन भिक्षुओं एवं विद्वानों में हेमचन्द्राचार्य सूरी प्रमुख माने जाते हैं, जिन्होंने प्राकृत एवं अपभ्रंश व्याकरण जिसे गुजराती भाषा की माँ की संज्ञा दी जाती है, उनके विकास में योगदान दिया। सामान्यतया इतिहासकारों द्वारा स्वीकृत है कि गुजराती साहित्य प्राचीन युग से ही जैन लेखकों द्वारा लिखा गया। चाहे बात कहानी, नाटक, काव्य या फिर साहित्य के अन्य विधाओं की हो जैन लेखकों का योगदान अविस्मरणीय है।

नरसिंह युगः पन्द्रहवीं शताब्दी में देखा जाय तो भक्ति आन्दोलन प्रभावी था। इस युग के प्रमुख कवि नरसिंह मेहता थे।

भक्ति युग[13] *:* इस युग में जैन एवं हिन्दू कवियों ने गुजराती साहित्य में श्री वृद्धि की। यह युग सगुण एवं निर्गुण धारा के रूप में गुजराती साहित्य में भी विभक्त पाया गया है। राम एवं कृष्ण विषयक साहित्य हिन्दी साहित्य की ही भांति गुजराती साहित्य में भी रचे गये। नरसिंह मेहता, मीरा, प्रेमानन्द भट्ट का योगदान गुजराती साहित्य में अमूल्य माना जाता है।

कन्नण साहित्य[14] *:* राजा कृष्णदेवाचार्य को वैष्णव साहित्य का जनक माना जाता है। कन्नण साहित्य में भी हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की गयी। कन्नण साहित्य में मुख्यरूपेण वैष्णव भक्ति का महत्व है।

हिन्दी साहित्य की भांति कन्नड़ साहित्य भी भक्ति आधारित काव्य से ओत-प्रोत है। कन्नड़ साहित्य के तमाम काव्यों में स्त्री विमर्श किया गया है। कुमार बाल्मीकि ने 1500 शताब्दी में प्रथम पूर्ण महाकाव्य रामायण को लिखा, जिसे तोरेव रामायण कहा गया। लेखक के अनुसार इस महाकाव्य में उन्होंने मूल रूप में शिव पार्वती आराधना युक्त पद्य लिखा। यह काव्य देश-विदेश में सांस्कृतिक मूल्यों के कारण प्रसिद्ध हुआ।

विजयनगर काल कन्नड़ साहित्य

काश्मीरी साहित्य में हिन्दी साहित्य की ही भांति भक्ति का प्रभाव दृष्टिगत होता है। काश्मीरी भाषा का प्रयोग करने वाले 14 वीं शताब्दी के प्रमुख कवि लल्लेश्वरी हुए। काश्मीरी साहित्य में शैव धर्म को विशेष महत्व प्राप्त है। कश्मीरी साहित्य में भी हिन्दी साहित्य की भांति नारी विमर्श के अनेक तथ्य मौजूद हैं। यद्यपि कश्मीरी साहित्य में व्याकारण एवं दर्शन का आधिक्य है किन्तु हिन्दी साहित्य की भांति मौलिक काव्य विद्यमान हैं, जहाँ नारी पक्ष अछूता नहीं है।

काश्मीरी साहित्य[15] *:* काश्मीरी साहित्य में हिन्दी एवं संस्कृत साहित्य के अनेक मूल ग्रंथों का अनुवाद किया गया।

मलयालम साहित्य[16] *:* मलयालम साहित्य मलयालम भाषा में लिखा गया है। मलयालम एक द्रविड़ भाषा है। यह तमिल भाषा से मिलती जुलती है।

रामचरितम[17] *:* यह मलयालम भाषा के साहित्य की अद्वितीय पुरानी रचना है। इसके कवि चीरमकवि है। इस रचना के अन्तर्गत मुख्यरूप से रामायण के युद्ध काण्ड की कथा वर्णित है। इस काव्य में स्त्री विमर्श का पक्ष मौजूद है। मलयालम भाषा के साहित्य पर भी हिन्दी साहित्य का प्रभाव है।

मणिपुरी साहित्य[18] *:* मणिपुरी साहित्य पर वैष्णव भक्ति का प्रभाव है। मणिपुरी साहित्य सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक रूप से समृद्ध है। 18 वीं शताब्दी के समय यह पूर्ण विकसित हो चुका था। हिन्दी साहित्य की भांति इसके साहित्य में भी धार्मिक भावना का प्रभाव है। मणिपुरी साहित्य में नारी विमर्श के तत्व अधिकांशतः विद्यमान हैं।

मराठी साहित्य[19] *:* मराठी साहित्य का तथ्यतः उद्‌भव धार्मिक लेखन के लिए हुआ। मराठी साहित्य के कवि अधिकांशतः सन्त थे। जिन्हें महानुभाव कह कर सम्बोधित किया गया। महानुभाव सन्त की कविताएँ गद्य से मिलती जुलती थीं। मराठी कवियों में वरकारी कवि भी हुआ करते थे, जिनकी कविताएँ पद्य पर आधारित होती थीं। मराठी कवियों में मुकुन्दराज प्रसिद्ध कवि हुए, जिन्होंने विवेक सिन्धु नामक ग्रंथ की रचना की। यह 18 वीं शताब्दी के पहले की बात है। मराठी कवियों में ध्यानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, मुक्तेश्वर, तुकाराम, रामदास, दासबोध आदि अत्यन्त प्रसिद्ध कवि हुए। इन लोगों ने महाभारत एवं रामचरितमानस पर आधारित अत्यन्त महत्वपूर्ण अनुवाद एवं रचनायें कीं। उपर्युक्त कवियों की रचनाओं पर हिन्दी साहित्य का प्रभाव है। साथ ही इनकी रचनाओं में विभिन्न बिन्दुओं से नारी विमर्श का उत्कृष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है।

पंजाबी साहित्य[20] *:* पंजाबी साहित्य पंजाबी भाषा में लिखा हुआ उन कवियों का कार्य है, जो मुख्य रूप से पंजाब के नागरिक हैं अथवा पाकिस्तान के हैं। पंजाबी भाषा में विभिन्न भाषाओं के कठिन कार्यों का काव्य के माध्यम से प्रस्तुतिकरण किया गया है। शाहमुखी एवं गुरूमुखी वर्णमाला पंजाबी साहित्य में सामान्यतया उपयोग की गयी है। पंजाबी साहित्य में अनेक सूफी सन्त हुए जिनकी रचनाओं में हिन्दी साहित्य का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि पंजाबी साहित्य में गेय पदों का आधिक्य है जो अत्यन्त दार्शनिक एवं धार्मिक हैं किन्तु नारी विमर्श के तत्व से ओझल नहीं हैं।

राजस्थानी साहित्य[21] *:* राजस्थानी साहित्य के मध्यकालीन कवियों में आधोदुरासो 1538-1651 प्रमुख कवि हुए। जिनकी रचनाएँ विरूद छिहत्तरी, दोहा सोलंकी प्रमुख हैं। इन्होंने अनेक ऐतिहासिक राजाओं पर आधारित रचनायें की, इनकी रचनाओं में धर्म एवं सामाजिकता का बोध प्राप्त है। इन्होंने हिन्दी साहित्य की भांति अपनी रचनाओं में नारी विमर्श का संदेश दिया है। राजस्थानी कवियों में आधो किसानों, आधो ओपो, बाल बख्श, पॉल हौत, बराथ, बनानाथ, बंकी दास असिया, बन्धुव्यास, चंद बरदायी चन्दरसाखी, चरनदास आदि प्रमुख कवि हैं, जिन्होंने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, पारम्परिक, सूफी एवं धार्मिक काव्यों की रचना की।

सिन्धी साहित्य[22]*:* अरब इतिहासकारों के लेखन में सिन्धी सूफी साहित्य एवं कविताओं का संदर्भ प्राप्त है। सिन्धी एक ऐसी भाषा है, जिसमें आठवीं या नौवीं शताब्दी के आस-पास कुरान का अनुवाद किया गया। मुस्लिम खलीफा जो बगदात में स्थित थे उन्होंने सिन्धी कवियों के प्रमाण को स्वीकार किया। सिन्धी साहित्य में ज्योतिष, आयुर्वेद एवं ऐतिहासिक तत्व भी मौजूद हैं। पीर नुरूद्‌दीन की लिखी सूफी कवितायें सिन्धी भाषा की अमूल्य निधी हैं। इनके ग्रंथों में रहस्यवाद एवं धार्मिक पुट के साथ ही स्त्री विमर्श के पक्ष दृष्टिगत हैं। सिन्धी साहित्य पर देखा जाय तो सभी भारतीय भाषाओं की भांति हिन्दी साहित्य का प्रभाव पड़ा है। सिन्धी साहित्य में अनेक प्रसिद्ध कवि एवं सूफी सन्त हुए।

आज-कल के कवियों के ऊपर यह आक्षेप किया जाता है कि वे स्वयंभू कवि किसी को अपना गुरू नहीं बनाते। यद्यपि यह कोई उचित आक्षेप नहीं है, नवीन कवि पुराने कवियों की कृतियों द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सकता है। उर्दू-कवियों में तो परिपाटी बन गयी है कि वे किसी-न-किसी कवि को अपना गुरू बनाते हैं और गुरूकवि अपने शिष्य की कविता के संशोधन में काफी परिश्रम से काम लेता है, लेकिन वजही और गौवासी के समय गुरू-परम्परा कायम करने की कोई परिपाटी नहीं थीं। दक्खिनी हिन्दी के छंद सभी अरबी छंद हैं, जो मात्रिक होते हैं और स्वरों के खींचातानी करने में कोई रूकावट नहीं डालते, इसलिए जहाँ तक छंद का सम्बन्ध है, कवि को कोई शिक्षा लेने की आवश्यकता नहीं थी। वजही के समय भी सुल्तान के कवि-दरबार

हुआ करते थे, किन्तु इब्राहीम कुतुबशाह का समय वह समय था, जब कि दरबारी में हिन्दी नहीं, फारसी कविता की तूती बोल रही थी। दक्खिनी हिन्दी-कविताओं ने उन्हें अरबी छंदों को अपनाया था, जो फारसी में भी एकाधिपत्य रखते थे। बाकी अलंकार आदि जो कविता के सजाने, गंभीर तथा चमत्कारपूर्ण बनाने के लिए आवश्यक होते हैं, उनका ज्ञान उन्हें पुस्तकों तथा कवि-दरबारियों द्वारा हो जाया करता था। फारसी कविता का जिसने रसास्वादन और अवगाहन न किया हो, ऐसा दक्खिनी कवि शायद ही कोई हो।[23]

निष्कर्ष के रूप में उपर्युक्त बातों का तात्पर्य यह है कि चाहे वैदिक साहित्य हो या भारतीय भाषा का कोई भी साहित्य हो सभी आपस में एक दूसरे का अनुकरण एवं अनुशरण करके ही साहित्य निर्माण करते हैं। भारत की परम्परा रही है कि साहित्यकार कोई भी काव्य या साहित्य रचने के पूर्व मौलिक काव्यों का अध्ययन अवश्य करते हैं, यही कारण है कि उनकी रचना पूर्व के काव्यों से प्रभावित रहती है। हिन्दी भाषा का मध्यकाल भक्ति काल रहा है, उस युग में हिन्दी के समान ही अन्य भारतीय भाषाओं ने भक्ति एवं धर्म आधारित रचनायें की। अधिकतर रचनायें हमारे प्राचीन धर्मशास्त्र एवं रामायण व महाभारत पर आधारित थीं। रामायण हिन्दी साहित्य का एक महानग्रंथ है, जिसमें तुलसीदास जी ने सभी सांसारिक पहलुओं को समेटा। नारी विमर्श का पक्ष उनसे अछूता नहीं रहा और ना ही उस काल की अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों की रचनाओं में नारी विमर्श छूट पाया। अतः यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन समसामयिक अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों एवं उनकी रचनाओं पर हिन्दी कवियों की रचनाओं का प्रभाव पड़ा है।

संदर्भ ग्रंथ

[1]*www.wikipedea.com*

[2]*Chandidas (1408), kritibas ojha,iswarchand gupta 1812-1859, Michael Madhusudan Dutta* 1824-1873

[3]*Akho (1591–1659),* poet, Vedantist and radical, Bhojo Bhagat (1785–1850), devotional poet, Bhalam (c. 1426–1500), Dayaram (1757–1852), Dhiro (1753–1825), devotional poet, Kant (1867–1923), writer and poet who wrote khandakavyas (narrative poems) and ghazals, Jaya Mehta (1929), Meerabai (1498-1547), alternate spelling: Meera, Mira, Meera Bai; Hindu poet-saint, mystical poetess whose compositions, extant version of which are in Gujarati and a Rajasthani dialect of Hindi, remain popular throughout India, Narsinh Mehta, alternate spelling: Narasingh Mehta (c. 1414 – c. 1481), Hindu poet-saint notable as a bhakta, an exponent of Hindu devotional religious poetry; acclaimed as Adi Kavi (Sanskrit for "first among poets") of Gujarat, where he is especially revered, Premanand (poet) (1640–1700) nonreligious poet who wrote originally in Hindi, but when reprimanded by his guru, switched to Gujarati, which he vowed to develop into a language of fine literary expression

[4]*Habba Khatun (16th century),* Lalleshwari also known as "Lalla" or "Lal Ded", Mahmud Gami (1765–1855), Maqbool Shah Kralawari (1976), Nund Reshi (1377–1440), Paramananda (Kashmiri poet) (1791–1864), Rasul Mir (died 1870), Rehman Rahi (born 1925), poet, translator and critic, Muzaffar Aazim, Rupa Bhavani (1621–1721)

[5]Acharya Ramlochan Saran (1889–1971), littérateur, gra-mmarian, publisher and poet, Vidyapati, also known as Vidyapati Thakur and called Maithil Kavi Kokil "the poet cuckoo of Maithili" (c. 1352 – c. 1448), Maithili poet and Sanskrit writer

[6]*Thunchaththu Ramanujan Ezh uthachan,* called the "Father of the Malayalam language" (fl. 16th century), Arnos Paathiri, also known as "Johann Ernst Hanxleden" (1681–1732), a German Jesuit priest, missionary in India and a Malayalam/Sanskrit poet, grammarian, lexicographer, and philologist, Poonthanam Namboothiri (fl. 16th century), devotional poet, Kunchan Nambiar (1705–1770), Unnayi Warrier, Irayimman Thampi (1783–1862), court poet and musician

[7]*Sant Eknath or Eknāth;* the epithet "sant" is traditionally given to persons regarded as thoroughly saintly (1533–1599), poet and scholar, Sant Tukaram (birth-year estimates range from 1577–-1609 – died 1650), Keshav Pandit, also known as Keshav Pandit or Keshav Bhat Pandit (died 1690), religious official under Chhatrapati

Shivaji, poet and Sanskrit scholar, Bahinabai Chaudhari (1880–1951), illiterate poet whose son wrote down her poems.

[8]*Kabi Samrat Upendra Bhanja (born sometime from 1670 to 1688),* poet and member of the royal family of a princely state, Fakir Mohan Senapati, short-story writer, novelist, poet, writer, government official and social activist who has variously been called the "Father of Modern Oriya Literature" and Vyasakabi or "founder poet" of the language. He wrote what is regarded as the first short story in the Oriya language, whose preser-vation he championed.

[9]SURYAMAL MISRAN (1815–1863), poet and scholar of grammar, logic, history and politics in the court of the Chauhan dynasty in Bundi

[10]*This list is in alphabetical order by family name (surname).* The position (first, second, last place) in a Telugu name is complicated. Traditionally, most Telegu family names have been given first, followed by the given name. For men, the two names are often followed by a caste title, such as Reddy, Sastri or Raju . In the 20th century, caste titles have been replaced by secondary given names such as Rao, Babu and Baba. Women may have only two-part names or an extension of the given name, such as Devi or Amma. Christian names follow the same order, but Muslim names often have the family name at the end. Many poets use one- or two-word pen names. (A Note on Telugu Names, p xix, Hibiscus on the Lake : Twentieth-century Telugu Poetry from India, edited and translated by Velcheru Narayana Rao) Annamacharya (1408–1503), mystic saint composer of the 15th century, widely regarded as the Telugu pada kavita pitaamaha (grand old man of simple poetry); husband of Tallapaka Tirumalamma, Errana also known as "Yellapregada" or "Erra-pregada" (fl.14th century), poet in the court of Prolaya Vemareddy who ruled areas in the future state of Andhra Pradesh; third poet of the Kavi Trayam, or "Trinity of Poets", that translated Mahabharatamu into Telugu over the course of a few centuries: he concluded the project by translating the half-finished "Aranya Parvamu" in the mode of Nannaya Bhattaraka and then shifting to that of Tikkana as a bridge between the two styles; honored with the title Prabandha Parameshwara ("the supreme lord of Prabandha") and Shambudasusu; belonged to Srivatsa gotram and Apastambha sutram of the Brahmin caste, Molla, also known as "Mollamamba", both popular names of Atukuri Molla (1440–1530) poet who wrote Telugu Ramayan; a woman, Nannaya Bhattaraka, also known as the First Poet "Aadi Kavi", the first poet of the Kavi Trayam, or "Trinity of Poets", that translated Mahabharatamu into Telugu over the course of a few centuries, Potana, born Bammera Pothana (1450–1510), poet best known for his translation of the Bhagavatam from Sanskrit; the book is popularly known as Pothana Bhagavatham, Tallapaka Tirumalamma, also known as "Timmakka" and "Thim-makka" (fl. 15th century) poet who wrote Subhadra Kaly-anam; wife of singer-poet Annamacharya and was popularly known as Timmakka, Vemana (fl. 14th century) poet, many of whose poems are now colloquial phrases in Telugu; a yogi or yogi-like person whose poems, in a simple style, are all in the Ataveladi ("dancing lady") meter, dealing with mystic, satirical, moral and social subjects, including social problems and challenging traditions; he is often por-trayed in the nude

[11]*The 15th century is marked by the emergence of Vaishnava lyrical poetry or the padavali in Bengal.* The poetry of Vidya-pati, the great Maithili poet, though not written in Bengali, influenced the literature of the time so greatly that it makes him a vital part of Middle Bengali literature. He flourished in the modern-day Darbhanga district of Bihar, India in the 14th century. His Vaishnava lyrics became very popular among the masses of Bengal. The first major Bengali poet to write Vaishnava lyrics was Chandidas, who belong to the modern-day Birbhum district (or, according to another opinion, Bankura district), Paschimbanga in the 15th century. Chandidas is also known for his humanist proclamation—"Sabar upare manush satya, tahar upare nai", "The supreme truth is man, there is noting more important than he is." Works of both Vidyapati and Chandidas, along with Jayadeva's Gita Govinda were known to the favourites of Chaitanya Mahaprabhu.The Bengali translations of two great Sanskrit texts the Ramayana and the Bhagavata Purana played a crucial role in the development of Middle Bengali literature. Maladhar Basu's Sri Krishna Vijaya, Triumph of Lord Krishna), which is chiefly a translation of the 10th and 11th cantos of the Bhagavata Purana, is the earliest Bengali narrative poem that can be assigned to a definite date. Maladhar Basu flourished in the modern-day Bardhaman district of Paschimbanga in the 15th century. Composed between 1473 and 1480 C.E., it is also the oldest Bengali

narrative poem of the Krishna legend. The Ramayana, under the title of Sri Rama Panchali, more popularly known as the Krittivasi Ramayana, was translated by Krittivas Ojha who belonged to the modern-day Nadia district Paschimbanga. He also, like Maladhar Basu, flourished in the 15th century.

[12]*The distinguished Jain monk and scholar Hemchandracharya suri was one of the earliest scholars of Prakrit and Apab-hramsha grammars and the mother of the Gujarati language.* He had penned a formal set of 'grammarian principles' as the harbinger of the Gujarati language during the reign of the Rajput king Siddharaj Jayasinh of Anhilwara. This treatise formed the cornerstone of Apabhramsa grammar in the Gujarati language, establishing a language from a combination of corrupted forms of languages like Sanskrit and Ardhamagadhi. He authored "Kavyanushasana": poetics, a handbook or manual of poetry, "Siddha-haima-shabd-anushasana": Prakrit and Apabhramsha grammars, and "Desinamamala": a list of words of local origin. It is gen-erally accepted by historians and researchers in literary genres in Gujarati literature that the earliest writings in this very ancient language were by Jaina authors. These were composed in the form of Rasas, Phagus and Vilasas. Rasas were long poems which were essentially heroic, romantic or narrative in nature. Salibhadra Suri's "Bhara-tesvara Bahubalirasa" (1185 AD), Vijayasena's "Revantgiri-rasa" (1235 AD), Ambadeva's "Samararasa" (1315 AD) and Vinayaprabha's "Gautama Svamirasa" (1356 AD) are the most illustrious examples of this form of literature in Gujarati. Other notable Prabandha or narrative poems of this period include Sridhara's "Ranamalla Chhanda" (1398 AD), Merutunga's "Prabodhachintamani", Padma-nabha's "Kanhadade Prabandha" (1456 AD) and Bhima's "Sadayavatsa Katha" (1410 AD). The phagus are poems that pictured the blissful and cheery nature of the spring festival (Vasantha). Rajasekhara's "Neminatha-phagu" (1344 AD) and Ajnat (Unknown) Kavi's "Vasantha-vilasa" (1350 AD) are unsurpassed instances of such texts. "Nem-inatha Chatuspadika" (1140 AD) by Vinayachandra is the oldest of the baramasi genre of Gujarati poems. The earliest work in Gujarati prose was Tarunaprabha's "Balavabodha" (1355 AD). "Prithvichandra Charita" (1422 AD) of Manik-yasundara, which essentially served as a religious romance, is the most paramount illustration of Old Gujarati prose and is reminiscent of BāGabhamma's Kadambari. Due to flourishing trade and commerce in Ahmedabad and Kha-mbat (Cambay), entertainment activities started to develop, and the Jain saints, story-tellers, puppet shows, and Bhavai (dramas) also revived literature. This gave birth to ancient literature and the 11th century noted poet Hemchandra (1088–1172). During the 15th century, Gujarati literature had come under the tremendous sway of the Bhakti move-ment, a popular cultural movement to liberate religion from entrenched priesthood. Narsinh Mehta (1415-1481 A.D.) was the foremost poet of this era. His poems delineated a very saintly and mystical sense and bore an intense refl-ection of the philosophy of Advaitism. Narasinh Mehta's "Govind Gaman", "Surat Sangram", "Sudama Charitra" and "Sringaramala" are stupendous and exceptional illust-rations of this devotional poetry.

[13]*This is the age when Jain and Hindu poets produced Gujarat literature in abundance. The prose and poetry created were mostly to encourage religion and worship.* The Gita, Ma-habharat, Vedas, and Bhagvat were instantly popular, and worshiping and offering love to God through them stayed in the hearts of people for long. Narsinh Mehta's creations are considered the best. There were also creations of prayers, Jain history, etc. During this period of the influence of the Bhakti Movement on Gujarati literature, the Ramayana, the Bhagavad Gita, the Yogavashistha and the Panchatantra were all translated into Gujarati. This period also experienced the colossal Puranic revival, which led to the rapid growth and maturation of devotional poetry in Gujarati literature. This era is divided into two parts, "Sagun Bhakti Dhara" and "Nirgun Bhakti Dhara"."Sagun Bhakti Dhara"In this "Dhara", the God is worshiped in physical form, having some form and virtues like Ram and Krishna.Narsinh Mehta, Meera, and Dayaram were foremost contributors of this "Dhara". Bhalan (1434-1514 AD) had furnished a meritorious representation of BāGabhamma's "Kadambari" into Guj-arati. Bhalana composed other substantial and irreplaceable works like "Dasham Skandha", "Nalakhyan", "Ramabal Charitra" and "Chandi Akhyana". Meera supplied many "Pada" (Verse). Premanand Bhatt, who is deemed the most important of all Gujarati poets, was absolutely involved in taking and elevating the Gujarati language and literature to new peaks. Amongst Premananda Bhatta's umpteen auth-orships, the most crucial are "Okha Harana", "Nalakhyana, "Abhimanyu Akhyana", "Dasham Skandha", and "Sudama Charitra". Shamal Bhatt was an extremely creative and productive poet who gave birth to unforgettable works like "Padmavati", "Batris Putli", "Nanda Batrisi",

"Sinhasan Batrisi" and "Madana Mohan" in Gujarati verse writing. Dayaram (1767–1852) had given rise to religious, ethical and romantic lyrics referred to as 'Garbi'. His most author-itative works comprise "Bhakti Poshan", "Rasik Vallabh" and "Ajamel Akhyan". The "Ramayana" was authored by Giridhara in Gujarati during the middle of the 19th century. Parmanand, Brahmanand, Vallabha, Haridas, Ranchhod and Divali Bai were other authoritative 'saint poets' from this period of poetry predomination in Gujarati literature. Poets from the Swaminarayan sect contributed immensely."Nirgun Bhakti Dhara "The God has no physical form in this "Dhara".Narsinh Mehta and Akho were the foremost contributors of this "Dhara". Akho's "Akhe Gita", "Chittavichar Samvad" and "Anubhav" Bindu" have always been illustrated as being 'emphatic' compositions on the Vedanta. Yet another poet, Mandana, had given form to immortal works like "Prabodha Battrisi", "Ramayan" and "Rupmangal Katha". Other contributors are Kabir-Panthi, Dhira Bhagat, Bhoja Bhagat, Bapusaheb Gaikwad, and Pritam.

[14]*King Krishnadevaraya, patron of Vaishnava literature.*The 14th century saw major upheavals in geo-politics of southern India with Muslim empires invading from the north. The Vijayanagara Empire stood as a bulwark against these invasions and created an atmosphere conducive to the development of the fine arts. In a golden age of Kannada literature, competition between Vaishnava and Veerashaiva writers was fierce and literary disputations between the two sects were common, especially in the court of King Deva Raya II. Acute rivalry led to "organised processions" in honour of the classics written by poets of the respective sects.To this period belonged Kumara Vyasa (the pen name of Naranappa), a doyen of medieval epic poets and one the most influential Vaishnava poets of the time. He was particularly known for his sophisticated use of metaphors and had even earned the title Rupaka Samrajya Chakravarti ("Emperor of the land of Metaphors"). In 1430, he wrote the Gadugina Bharata, popularly known as Karnata Bharata Kathamanjari or Kumaravyasa Bharata in the Vyasa tradition. The work is a translation of the first ten chapters of the epic Mahabharata and emphasises the divinity and grace of the Lord Krishna, portraying all characters with the exception of Krishna to suffer from human foibles. An interesting aspect of the work is the sense of humour exhibited by the poet and his hero, Krishna. This work marked a transition of Kannada literature to a more modern genre and heralded a new age combining poetic perfection with religious inspiration. The remaining parvas (chapters) of Mahabharata were translated by Timmanna Kavi (1510) in the court of King Krishnadevaraya. The poet named his work Krishnaraya Bharata after his patron king. Kumara Valmiki (1500) wrote the first complete brahminical adaptation of the epic Ramayana, called Torave Ramayana. According to the author, the epic he wrote merely narrated God Shiva's conversation with his consort Parvati. This writing has remained popular for centuries and inspired folk theatre such as the Yakshagana, which has made use of its verses as a script for enacting episodes from the great epic. In Valmiki's version of the epic, King Ravana is depicted as one of the suitors at Sita's Swayamvara (lit. a ceremony of "choice of a husband"). His failure to win the bride's hand results in jealousy towards Rama, the eventual bridegroom. As the story progresses, Hanuman, for all his services to Rama, is exalted to the status of "the next creator". Towards the end of the story, during the war with Rama, Ravana realises that his adversary is none other than the God Vishnu and hastens to die at his hands to achieve salvation.Chamarasa, a Veerashaiva poet, was a rival of Kumara Vyasa in the court of Devaraya II. His eulogy of the saint Allama Prabhu, titled Prabhulinga Lile (1430), was later translated into Telugu and Tamil at the behest of his patron king. In the story, the saint was considered an incarnation of Hindu God Ganapathi while Parvati took the form of a princess of Banavasi. Interaction between Kannada and Telugu literatures, a trend which had begun in the Hoysala period, increased. Translations of classics from Kannada to Telugu and vice versa became popular. Well-known bilingual poets of this period were Bhima Kavi, Piduparti Somanatha and Nilakanthacharya. In fact, so well versed in Kannada were some Telugu poets, including Dhurjati, that they freely used many Kannada terms in their Telugu writings. It was because of this "familiarity" with Kannada, that the notable writer Srinatha even called his Telugu, "Kannada". This process of interaction between the two languages continued into the 19th century in the form of translations by bilingual writers. Vaishnava The Vaishnava Bhakti (devotional) movement involving well-known Haridasas (devotee saints) of that time made an indelible imprint on Kannada literature starting in the 15th century, inspiring a body of work called Haridasa Sahitya ("Haridasa literature"). Influenced by the Veerashaivism of the 12th century, this movement touched

the lives of millions with its strong current of devotion. The Haridasas conveyed the message of Vedantic philosopher Madhvach-arya to the common man through simple Kannada language in the form of devaranamas and kirthanas (devotional songs in praise of god). The philosophy of Madhvacharya was spread by eminent disciples including Naraharitirtha, Jayatirtha, Vyasatirtha, Sripadaraya, Vadirajatirtha, Pur-andara Dasa, and Kanaka Dasa. Chaitanya Mahaprabhu, a prominent saint from distant Bengal, visited the region in 1510, further stimulating the devotional movement. Purandara Dasa (1484–1564), a wandering bard, is believed to have composed 475,000 songs in the Kannada and Sanskrit languages, though only about 1,000 songs are known today. Composed in various ragas, and often ending with a salutation to the Hindu deity Vittala, his compositions presented the essence of the Upanishads and the Puranas in simple yet expressive language. He also devised a system by which the common man could learn Carnatic music, and codified the musical composition forms svaravalis, alankaras ("figure of speech") and geethams. Owing to such contributions, Purandara Dasa earned the honorific Karnataka Sangeeta Pitamaha ("Father of Carnatic Music"). Kanaka Dasa (whose birth name was Thimmappa Nayaka, 1509–1609) of Kaginele (in modern Haveri district) was an ascetic and spiritual seeker who authored important writings such as Mohanatarangini ("River of Delight"), the story of the Hindu god Krishna in sangatya metre; Nris-imhastava, a work dealing with glory of god Narasimha; Nalacharita, the story of Nala, noted for its narration; and Hari Bhaktisara, a spontaneous writing on devotion in shat-padi metre. The latter writing, which deals with niti (morals), bhakti (devotion) and vairagya (renunciation) has become popular as a standard book of learning for children. Kanaka Dasa authored a unique allegorical poem titled Ramad-hanya Charitre ("Story of Rama's Chosen Grain"), which exalts ragi over rice. Apart from these classics, about 240 songs written by the Kanaka Dasa are available today. The Haridasa movement returned to prominence from the 17th through 19th centuries, producing as many as 300 poets in this genre; well-known among them are Vijaya Dasa (1682–1755), Gopala Dasa (1721–1769), Jagannatha Dasa (1728–1809), Mahipathi Dasa (1750), Helavanakatte Giria-mma and others. Over time, the movement's devotional songs inspired a form of religious and didactic performing art of the Vaishnava people called the Harikatha ("Stories of Hari"). Similar developments were seen among the follo-wers of the Veerashaiva faith who popularised the Shiva-katha ("Stories of Shiva")Mysore and Keladi period Main articles: Mysore literature and Musicians of the Kingdom of Mysore.With the decline of the Vijayanagara Empire, the Kingdom of Mysore (1565–1947) and the kingdom of the Keladi Nayakas (1565–1763) rose to power in the southern and western regions of modern Karnataka respe-ctively. Production of literary texts covering various themes flourished in these two courts. The Mysore court was adorned by eminent writers who authored encyclopaedias, epics, and religious commentaries, and composers and musicians. The Keladi court is better known for writings on Veerashaiva doctrine. The Mysore kings themselves were accomplished in the fine arts and made important contributions. A unique and native form of poetic literature with dramatic representation called Yakshagana gained popularity in the 18th century. Geetha Gopala, a well-known treatise on music, is ascribed to King Chikka Devaraja Wodeyar (1673–1704), the earliest composer of the dynasty, who went by the honorific Sahitya Vidyanikasha Prastharam ("Expert in literature") Inspired by Jayadeva's Geetha Govinda in Sanskrit, it was written in saptapadi metre. This is the first writing to propagate the Vaishnava faith in the Kannada language. Also writing in this periodwas Sarvajna (lit. "The all knowing")—a mendicant and drifter Veerashaiva poet who left a deep imprint on Kannada speaking region and its people. His didactic Vachanas, penned in the tripadi metre, constitute some of Kannada's most celebrated works. With the exception of some early poems, his works focus on his spiritual quest as a drifter. The pithy Vachanas contain his observations on the art of living, the purpose of life and the ways of the world. He was not patronised by royalty, nor did he write for fame; his main aim was to instruct people about morality.The writing of Brahmin author Lakshmisa (or Lakshmisha), a well-known story-teller and a dramatist, is dated to the mid-16th or late 17th century. The Jaimini Bharata, his version of the epic Mahabharata written in shatpadi metre, is one of the most popular poems of the late medieval period. A collection of stories, the poem includes the tale of the Sita Parityaga ("Repudiation of Sita"). The author successfully converted a religious story into a very human tale; it remains popular even in modern times. The period also saw advances in dramatic works. Though there is evidence that theatre was known from the 12th century or earlier, modern Kannada theatre is traced to the rise of Yakshagana (a type of field play), which appeared in the 16th century. The golden age of Yakshagana

compositions was tied to the rule of King Kanteerava Narasaraja Wodeyar II (1704–1714). A poly-glot, he authored 14 Yakshaganas in various languages, although all are written in the Kannada script. He is credited with the earliest Yakshaganas that included sangeeta (music), nataka (drama) and natya (dance). Mummadi Krishnaraja Wodeyar (1794–1868), the ruler of the princely state of Mysore, was another prolific writer of the era. More than 40 writings are attributed to him, including a poetic romance called Saugandika Parinaya written in two versions, sangatya and a drama. His reign signalled the shift from classical genres to modern literature which was to be complemented by the influence of colonial period of India.

[15]*Kashmiri literature (Kashmiri has a history of at least 2,500 years,* going back to its glory days of Sanskrit. Early names include Patanjali, the author of the Mahabhashya commentary on Pāṇini's grammar, suggested by some to have been the same to write the Hindu treatise known as the Yogasutra, and Dridhbala, who revised the Charaka Samhita of Ayurveda.In medieval times the great Kashmir Valley School of Art, Culture and Philosophy Kashmir Shaivism arose. Its great masters include Vasugupta (c. 800), Utpala (c. 925), Abhinavagupta and Kshemaraja. In the theory of aesthetics one can list the Anandavardhana and Abhinavagupta. Many generations later, in our modern times, a new lease of life given, to same "school of thought" was given by Swami Lakshman Joo of Ishbher/Gupta Ganga, Srinagar, India.The use of the Kashmiri language began with the poet Lalleshvari or Lal Ded (14th century), who wrote mystical verses. Another mystic of her time equally revered in Kashmir and popularly known as Nunda Reshi wrote powerful poetry like his senior Lal Ded. Later, came Habba Khatun (16th century) with her lol style. Other major names are Rupa Bhavani (1621–1721), Arnimal (d. 1800), Mahmud Gami (1765–1855), Rasul Mir (d. 1870), Paramananda (1791–1864), Maqbool Shah Kra-lawari (1820–1976). Also the Sufi poets like Shamas Fakir, Wahab Khar, Soch Kral, Samad Mir, and Ahad Zargar. Among modern poets are Ghulam Ahmad Mahjur (1885–1952), Abdul Ahad Azad (1903–1948), and Zinda Kaul (1884–1965).During 1950s, a number of well educated youth turned to Kashmiri writing, both poetry and prose, and enriched modern Kashmiri writing by leaps and bounds. Among these writers are Dinanath Nadim (1916–1988), Rahman Rahi, Ghulam Nabi Firaq, Ali Muhammed Shahbaz, Mushtaq Kashmiri, Amin Kamil (1923-), Ali Mohd Lone, Akhtar Mohiuddin, Som Nath Zutshi, Muzaffar Aazim and Sarvanand Kaul 'Premi'. Some later day writers are Hari Krishan Kaul, Majrooh Rashid, Rattanlal Shant, Hirdhey Kaul Bharti, Rafiq Raaz, Tariq Shehraz, Shafi Shauq, Nazir Jahangir, M H Zaffar, Shenaz Rashid, Shabir Ahmad Shabir, Nisar Azam,Javaid Anwar, Shabir Magami,', Moti Lal Kemmu (playwright).Contemporary Kashmiri literature appears in Sheeraza published by the Jammu & Kashmir Academy of Art, Culture and Languages, Anhar published by the Kashmirri Department of the Kashmir University, and an independent magazine Neab International Kashmiri Magazine — http://www.neabin-ternational.org published from Boston,Vaakh an independent publication and Koshur Samachar.== Kashmiri Drama:-SUYA is a kashmiri drama written by Ali Mohmmad Lone.

[16]*The term Malayalam literature refers to literature written in Malayalam language.* Malayalam is the language spoken by around 35 million people, mainly the inhabitants of the state of Kerala and the union territory of Lakshadweep Islands in India. Malayalam is a Dravidian language and has close association with the other Dravidian languages, especially Tamil. Historically, Kerala had been receptive to foreign influence and this has had effect on the Malayalam literature also, which has evolved over time.

[17]*Ramacharitham is a collection of poems written at the end of preliminary stage in Malayalam literature's evolution. It is the oldest Malayalam book available.* The collection has 1814 poems in it. Ramachritham mainly consists of stories from Yuddha Kanda of Ramayana. It is written by a poet named Cheeramakavi who, according to poet Ulloor S. Parameshwaya Aiyer was Sree Veerarama Varman, a king of Travancore from AD 1195 to 1208. Some other experts like Dr. K.M. George and P.V. Krishnan Nair claim that the origin of the book is in north Kerala citing the use of certain words in the book and also the fact that the manuscript of the book was actually recovered from Neeleshwaram in north Kerala. Some experts consider it as a Tamil literary piece. According to A. R. Rajaraja Varma who heavily contributed in the development of Malayalam grammar, is of the opinion that Malayalam originated from ancient Tamil. Ramacharitham is considered as a book written during the forming years of Malayalam. According to Rev. Dr. Hermann Gundert who compiled the first dictionary in Malayalam language, Ramacharitham shows the ancient of Malayalam language

[18]*The momentous change in Manipuri Literature and culture was during the reign of Meidingu Charairongba and his successors.* With the dawn of eighteenth century, Meitrabak (Manipur) achieved the full development of her culture, economy and state system. In this revolutionary change in the Meitrabak's life, three kings - father, son, and a great grandson : Charairongba (1697–1709), Pamheiba or Garib-niwaz (1709–1748) and Chingthangkhomba or Bhayg-yachandra (1749–1798) played very significant roles, the stamp of which was imprinted on the history of Meitrabak. After the death of Paikhomba, his newphew Charairongba, the son of his younger brother Tonsenngamba ascended the throne in 1697. His reign was a transition period from traditional Meetei social situation to a Hinduised Meetei Society. He constructed several temples for Meitei deities like Panthoibi, Sanamahi and Hindu deities after his espousal with Vaishnavism . The relation with Burma was deteriorated and more strengthened with India after conversion into Vaishnavism. As a result, the period from the embraced of Vaishnavism by Meetei King till the advent of British in Meitrabak (Manipur) is considered to be the *Medieval Period of Manipuri Literature.* Influence of Vaishnavism As great as a conqueror, Meidingu Pamheiba (1709–1748) was also a great religious and social reformer, under his royal patronage Cheitanya's school of Vaishnavism was propagated in Meitrabak. Cheitharol Kumbaba records that in October, 1717. Graibnawaz was initiated into Vaishnavism by Guru Gopal Das. Afterward, he switched over to Ramanandi School of Vaishnavism after the arrival of Shanta Das. *Puya Meithaba* – Buring of the Meetei Puyas (Old Scriptures). Other remarkable anonymous book of this period is - *"Chothe Thangwai Pakhangba ".* In the later part of 18th century, *Wangkhei Pundit Gopiram Singh* was the scholar in the royal court of Medingu Chingthangkhomba (1763–1798). In case of any adversity, King used to consult with him. In 1789, (as per Meetei calendar, 28th Wakching, Thursday) Gobin-daram had started the writing of *"Meihaubaron Puya".*

[19]*Though the earliest known Marathi inscription found at the foot of the statue at Shravanabelgola in Karnataka is dated c. 983,* the Marathi literature actually started with the religious writings by the saint-poets belonging to Maha-nubhava and Warkari sects. Mahanubhava saints used prose as their main medium, while Warkari saints preferred poetry as the medium. The early saint-poets were Mukundaraj who wrote Vivekasindhu, Dnyaneshwar (1275–1296) (who wrote Amrutanubhav and Bhawarthadeepika, which is popularly known as Dnyaneshwari, a 9000-couplets long commentary on the Bhagavad Gita) and Namdev. They were followed by the Warkari saint-poet Eknath (1528–1599). Mukteswar translated the great epic Mahabharata into Marathi. Social reformers like saint-poet Tukaram transformed Marathi into an enriched literary language. Ramdas's (1608–1681) Dasbodh and Manache Shlok are well-known products of this tradition.In the 18th century, several well-known works like Yatharthadeepika (by Vaman Pandit), Naladamayanti Swayamvara (by Ragh-unath Pan-dit), Pandava Pratap, Harivijay, Ramvijay (by Shridhar Pandit) and Mahabharata (by Moropant) were produced. However, the most versatile and voluminous writer among the poets was Moropanta (1729–1794) whose Mahabharata was the first epic poem in Marathi. The historical section of the old Marathi literature was unique as it contained both prose and poetry. The prose section cont-ained the Bakhars that were written after the foundation of the Maratha kingdom by Shivaji. The poetry section contained the Povadas and the Katavas composed by the Shahirs. The period from 1794 to 1818 is regarded as the closing period of the Old Marathi literature and the begin-ning of the Modern Marathi literature.

[20]*Punjabi literature refers to literary works written in the Punjabi language particularly* by peoples from the historical Punjab region of India and Pakistan including the Punjabi diaspora. The Punjabi language is written in several different scripts, of which the Shahmukhi, the Gurmukhî scripts are the most commonly used.Medieval eraEarly Punjabi literature (c. 11th-13th century)The earliest Punjabi literature is found in the fragments of writings of the 11th Nath yogis Gorakshanath and Charpatnah which is primarily spiritual and mystical in tone. Notwithstanding this early yogic literature, the Punjabi literary tradition is popularly seen to commence with Fariduddin Ganjshakar (1173–1266). Whose Sufi poetry was compiled after his death in the Adi Granth.

[21]ADHO DURASO (1538–1651): Virud Chihattari, Doha Solanki Viramdevji ra, Jhulana Rav Surtan ra, Marsiya Rav Surtan ra, Jhulana Raja Mansingh Macchvaha ra, Jhulana Ravat Megha ra, Git Raji sri Rohitasji ra, Jhulana Rav Amarsingh Gajsinghota ra, Kirta Bhavani, Mataji ra Chhand, Sri Kumar Ajjaji na Bhuchar Mori ni Gajagat Adho Kisano II (born 1785), composed historical poems and wrote a book on Rajasthani ProsodyAdho Opo

(1752–1843), Peshwa of Sirohi: Dingal gitasBalabakhsha Palhavta Barath (born 1917) a Rajasthani poet known for his poems on Ethics Bananath (born 1780) a Rajasthani poet of Nath tradition Bankidas Asiya ,Bhandau Vyas (15th century): Hamm-irayana Chand Bardai Chandrasakhi (1643–1733) Charandas (1703–1782) Dariyavji (1676–1758) Dayaldas Sindhay-ach (1798–1891): Bikaner re Rathoro ri Khyat (Dayaldas ri Khyat), Aryakhyana Kalpadruma, Desh Darpana, Panwa Vansh-Pradeep, Bikaner re Rathoro ra Geet Din Darvesh (Saim Dina) (born 1753), Rajasthani Saint Poet

[22]*The earliest reference to Sindhi literature is contained in the writings of Arab historians.* It is established that Sindhi was the first and the earliest language of East in which the Quran was translated in the eighth or ninth century A.D. There is evidence of Sindhi poets reciting their verses before the Muslim Caliphs in Baghdad. It is also recorded that treatises were written in Sindhi on astronomy, medicine and history during the eighth and ninth centuries. Shortly afterwards, Pir Nooruddin, an Ismaili Missionary, wrote Sufis tic poetry in Sindhi language. His verses, known as "ginans", can be taken as the specimen of early Sindhi poetry. He came to Sindh during the year 1079 AD. His poetry is an interesting record of the language which was spoken commonly at that time. He was a Sufi and a preacher of Islam. His verses are, therefore, full of mysticism and religion. After him, Pir Shams Sabzwari Multani, Pir Shahabuddin and Pir Sadruddin are recognized as poets of Sindhi language. We even find some verses composed by Baba Farid Ganj Shakar, in Sindhi language. Pir Sadruddin (1290–1409 AD), was a great poet, saint and Sufi of his time. He composed his verses (ginans) in Lari and Katchi dialects of Sindhi. He also composed the "gin-ans" in the Punjabi, Seraiki, Hindi and Gujarati languages. He modified the old script of Sindhi language, which was commonly used by the lohana catse of Hindus of Sindh who embraced Islam under his teaching and were called by him 'Khuwajas' or 'Khojas'. During the Sama dynasty (1010–1351 A.D.) who took over after Soomra, native Sindhi-speaking who ruled Sindh after the Arabs), and afterwards in the days of Arghuns, Tarkhans, Mughal governors (1521–1700 A.D.), Sindh produced may scholars and poets of Sindhi, Arabic and Persian languages. Qazi Qadan, Shah Karim of Bhulri (grand father of Shah Abdul Latif), Shah lutufullah Qadri, Shah Inayat Sufi Nasarpoori, Mir Masoom Shah, Makhdoom Nooh of Hala, lakho lutufullah, Mahamati Pirannath and many others are the renowned literary perso-nalities of this period. Bhagu Bhan, Sumang Charan, Shah Abdul Karim, Shah Inayat and many other poets of this period have enriched the language with mystic, romantic and epic poetry. Many centers of learning (Madrasahs) (in Thatta) flourished during tenth to fifteenth centuries where celebrated scholars of Sindh used to teach religion, philosophy and rhetoric. The great scholars among them who earned high reputation even in the Muslim centres of Mecca and Medina were Makhdoom Abdul Hasan, Makhdoom Ziauddin, Makh-doom Muhammad Hashim Thattavi and Makhdoom Muha-mmad Muin Thattavi (that from Thatta). Their works are mostly in Arabic, Persian (Governing language of at that time) and Sindhi languages (language spoken by local peoples). Shah Abdul Latif of Bhit (1690–1753) was a great thinker, Sufi, musician and poet from Sindh. Dr. Sorely, who compared the poetry of the great poets of all major languages of the world, in-cluding Greek, Latin and Arabic, in his book Musa Pravaganus, gives first place to Shah Latif for his language and thought. He invented a variant of Tanbura a musical instrument still used when his verses are sung by people who love his literature. He wrote Sassi Punnun, Umar Marvi in his famous book Shah Jo Risalo. Bhittai gave new life , thought and content to the language and literature of Sindh. He traveled to remote corners of Sindh and saw for himself the simple and rustic people of his soil in love with life and its mysteries. He studied the ethos of the people and their deep attachment to the land, the culture, the music, the fine arts and crafts. He described Sindh and its people. Through simple folk tales, Lateef expressed profound ideas about the universal brotherhood of mankind, patriotism, war against injustice and tyranny, and above all the romance of human existence. He was a great musician also and he evolved fifteen new melodies (swaras). The great beauty of his poetry is that his every line or verse is sung till this day with a specific note or melody. Sachal Sarmast, Saami and Khalifo Nabi Bux Laghari are celebrated poets of the Talpur period in Sindh (1783–1843 AD). Khalifo Nabi Bux is one of the greatest epic poets of Sindh, known for his depictions of patriotic pathos and the art of war. Rohal, Sami, Bedil, Bekas, Misri Shah, Hammal Faqir, Dalpat Sufi, Sabit Ali Shah, Khair Shah, Fateh Faqir and Manthar Faqir Rajar are some of the more noteworthy poets of the pre and early British era.

[23]*दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा-* श्री राहुल सांकृत्यायन, बिहार-राष्ट्र-परिषद् पटना, पृष्ठ संख्या 17-18

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,64-67
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 25 सितम्बर 2016

प्लेटो का विज्ञानवाद

डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्लेटो का विज्ञानवाद* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार अग्निहोत्री* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि विज्ञान ही विश्व के मूल है, सभी पदार्थो के सार रूप हैं। विज्ञान नित्य, शाश्वत, अपरिणामी, सामान्य सार्वभौम, निरपेक्ष, स्वतन्त्र, पारमार्थिक तत्व है।

प्लेटो के दर्शन में सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त उनका विज्ञानवाद है। कुछ विद्वानों का कहना है कि विज्ञानवाद महात्मा सुकरात का सिद्धान्त है, प्लेटो का नहीं। वस्तुतः विज्ञानवाद प्रत्यक्षरूप में जन्मदाता सुकरात ने इसे विकसित कर पूर्ण विज्ञानवाद का सिद्धान्त बनाया। सुकरात के अनुसार प्रत्यय केवल विचारों को नियंत्रित करते है। अतः इन्हें विचारों का मापदण्ड कहते हैं। प्लेटो ने सुकरात के मानसिक प्रत्यों को वास्तविक बनाया। अतः प्रत्यय केवल मानसिक विचार नहीं, वरन् वास्तविक वस्तु है, जिनका अस्तित्व मन के बाहर स्वतन्त्र है। इन स्वतन्त्र वस्तुओं का नाम विज्ञान है। विज्ञानवाद तत्व सम्बंधी सिद्धान्त है जिसके अनुसार विज्ञान मानसिक विचार नहीं, वरन् वाह्य जगत की वस्तुओं के सारभूत तत्व है प्लेटो के अनुसार वास्तविक ज्ञान तो केवल प्रत्ययों का विज्ञानों का ही सम्भव है। प्रत्यय या विज्ञान जो अपरिणामी, सामान्य नित्य तथा वस्तुओं के सारभूत तत्व है, हमारे ज्ञान के एकमात्र विषय है। इन्द्रियजगत् जिसमें अनित्यता, सन्देह सापेक्षता का साम्राज्य है, हमारे ज्ञान के विषय कदापि नहीं बन सकते। विज्ञान जो नित्य, सार्वभौम और असंदिग्ध है, ये हमारे ज्ञान के वास्तविक विषय है।

प्रश्न यह है कि प्लेटो अपने विज्ञानवाद की स्थापना कैसे करते है, या विज्ञानवाद की सिद्धि के लिए क्या तर्क उपस्थित करते हैं? प्लेटो विज्ञानवाद की सिद्धि के लिए संवाद सिद्धान्त का सहारा लेते हैं। संवाद सिद्धान्त में मानसिक विचार तथा वाह्य वस्तु में संगति या सामन्जस्य का परिणाम बतलाया जाता है। इसे यथार्थवाद भी कहते हैं, क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार यथार्थ ज्ञान वहीं है जिसके अनुरूप वस्तु हो। ज्ञान मानसिक है तथा वस्तु वाह्य जगत में हैं। यदि दोनों में संगति या संवाद

* एस. एस. खन्ना महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : agni.mkumar@yahoo.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

हो तो ज्ञान यथार्थ है। यदि दोनों में असंगति हो तो ज्ञान यथार्थ नहीं है। उदाहरणार्थ हमारे मन में एक झील का प्रत्यय है। यह प्रत्यय यथार्थ तभी होगा जब इसके अनुरूप वाह्य जगत में एक झील हो। यदि वाह्य जगत में झील नहीं है तो झील का प्रत्यय अयथार्थ होगा। दूसरे शब्दों में बिम्ब और प्रतिबिम्ब की पारस्परिक संगति ही संवाद है। यह संवाद ही ज्ञान की यथार्थता का द्योतक है। तात्पर्य यह है कि ज्ञान तभी यथार्थ होगा जब विचार के अनुरूप वस्तु भी हो। वस्तु का होना अनिवार्य है यही प्लेटो का वस्तुवाद है। यदि वस्तु की सत्ता नहीं है तो विचार या ज्ञान की यथार्थता सिद्ध नहीं होगी। इस प्रकार प्लेटो के विज्ञान केवल मानसिक विचार हीं नहीं वरन् वाह्य वस्तु भी है। यहाँ हम स्पष्ट देखते है कि सुकरात के मानसिक प्रत्यय प्लेटो के विज्ञान बनकर वाह्य वस्तु का रूप भी धारण करते हैं।

विज्ञान क्या है तथा इसकी उत्पत्ति कैसे हुई? प्लेटो के अनुसार विज्ञान व्यक्ति नहीं जाति का रूप है विशेष पदार्थ नहीं, वरन् सामान्य है। इन्हें वर्गगत् प्रत्यय भी कहा गया है। उदाहरणार्थ सुन्दर वस्तुएं व्यक्ति हैं, परन्तु सौन्दर्य जातिरूप विज्ञान है। प्लेटो के अनुसार विज्ञान वस्तु के सार रूप है। किसी वर्ग के विभिन्न व्यक्तियों का सार ही उस वर्ग का विज्ञान है। उदाहरणार्थ सौन्दर्य विज्ञान है, जो सुन्दर वस्तुओं का सार हैं रमणी का मुख सुन्दर है, चाँदनी रात सुन्दर हैं प्रकृति के दृश्य सुन्दर है। अतः सुन्दर वस्तुएं अनेक हैं। इन सभी सुन्दर वस्तुओं से हम उनके सार 'सौन्दर्य' को पृथक कर लेते हैं तथा सौन्दर्य विज्ञान का निर्माण करते हैं। सार को पृथक करने की क्रिया के लिए तुलना की आवश्यकता है। रमणी के मुख, चाँदनी रात तथा प्रकृति के दृश्य आदि सभी में तुलना करते हैं। इस तुलना के आधार पर हम सबमें एक सामान्य तथा सार गुण सौन्दर्य का पता लगाते हैं। यह तुलना बुद्धि का कार्य है, इन्द्रियों का नहीं। इन्द्रियों से हमें अलग-अलग सुन्दर वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। परन्तु सार रूप सौन्दर्य की उपलब्धि तो हमें मात्र बुद्धि से ही हो सकती है। बुद्धि किसी वर्ग या जाति के विभिन्न व्यक्तियों में साम्य वैशम्य का निश्चय करती है। साम्य समान गुण है तथा वैशम्य विशेष गुण है। बुद्धि सामान्य गुणों को ग्रहण करती है तथा विशेष गुणों को छोड़ देती हैं उस वर्ग के सभी व्यक्तियों का सार ही उस वर्ग का समान्य, जाति या विज्ञान है। उदाहरणार्थ सौन्दर्य विज्ञान सभी सुन्दर वस्तुओं का सार है जिसका निर्माण समान गुणों के ग्रहण तथा विशेष गुणों के त्याग से होता है। जिस प्रकार सौन्दर्य विज्ञान है। उसी प्रकार न्याय, श्वेत, अश्व आदि सभी विज्ञान है। अब प्रश्न यह है कि इन विज्ञानों के अनुरूप वाह्य वस्तु है या नहीं? यदि इनके अनुरूप कोई वाह्य वस्तु नहीं है तो केवल काल्पनिक या मानसिक प्रत्यय होंगे। प्लेटो के अनुसार सौन्दर्य विज्ञान केवल काल्पनिक नहीं, वास्तविक भी है। तात्पर्य यह है कि ये विज्ञान वाह्य जगत में वस्तु रूप में भी स्थित है। सौन्दर्य विज्ञान है, वाह्य वस्तु है तथा समस्त सुन्दर वस्तुओं से भिन्न है। यह सौन्दर्य विज्ञान सभी सुन्दर वस्तुओं से भिन्न होते हुए भी सभी सुन्दर वस्तुओं का प्रतिनिधित्व करता है। वस्तुतः वह सौन्दर्य 'परमार्थ सौन्दर्य' है तथा सभी सुन्दर वस्तुएं उसका आभास मात्र हैं। भौतिक जगत में तो केवल वस्तु है, परन्तु पारमार्थिक जगत् विज्ञानों से भरा है। भौतिक जगत् में जितनी भी वस्तुएं है परमार्थक जगत् में उतने ही विज्ञान हैं, क्योंकि विज्ञान तो वस्तु के कारण है।

विज्ञान की सिद्धि

प्लेटो के अनुसार विज्ञान ही विश्व के मूल कारण हैं अर्थात् विश्व की सभी वस्तुओं की उत्पत्ति विज्ञान से होती है। अरस्तू के अनुसार प्लेटो ने अपने विज्ञानवाद की सिद्धि के लिए पाँच प्रकार के तत्वों का उपयोग किया है जो निम्नलिखित है- 1. विज्ञानमूलक तर्क, 2. अभेदमूलक तर्क, 3. अभावमूलक तर्क, 4. सम्बन्धमूलक तर्क एवं 5. तृतीय मनुष्यमूलक तर्क।

(1) विज्ञान मूलक तर्क; ज्ञान और विज्ञान का अस्तित्व है, अतः उनका कोई विषय अवश्य होना चाहिए। भौतिक जगत में अनित्यता है, अर्थात् संसार की सभी वस्तुएं अनित्य हैं क्योंकि ये विशेष हैं। अतः विशेष वस्तु इनका विषय नहीं हो सकती है। इन विज्ञानों की नित्यता स्वतः सिद्ध है। यदि इनकी नित्यता को हम स्वतः सिद्ध न माने तो किसी भी प्रकार का ज्ञान सम्भव नहीं, क्योंकि ज्ञान की नित्यता अति भौतिक विज्ञान जगत् की देन है। परन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि इन्द्रिय जगत का ज्ञान बिल्कुल अनावश्यक हैं फीड़ो में प्लेटो का स्पष्टतः कहना है कि इन्द्रियानुभाव के बिना विज्ञान का संस्मरण नहीं हो सकता।

(2) अभेदमूलक तर्क; संसार में अनेक मनुष्य हैं और संसार में अनेक पशु हैं। परन्तु संसार का कोई भी विशेष मनुष्य का पशु 'सामान्य' मनुष्य या पशु नहीं हो सकता है। इस प्रकार सामान्य विशेषों से भिन्न है, जाति व्यक्ति से पृथक हैं। इन्द्रिय जगत की सभी वस्तुएं विशेष हैं अतः इनसे परे पारमार्थिक जगत की सत्ता अवश्य है जहाँ सामान्य रहते हैं। जगत के सभी विशेषों या व्यक्तियों की सत्ता सामान्यों के कारण ही है सजातियों में एकता तथा विजातीय वस्तुओं में भेद के कारण विज्ञान माने गये हैं।

(3) अभावमूलक तर्क; सामान्य विशेषों का सार होते हुए भी विशेषों से भिन्न है। जब हम सामान्य (मनुष्य) का चिन्तन करते हैं तो इसका विषय मनुष्य जाति या सामान्य ही है। इस पर विशेष मनुष्यों (व्यक्तिरूप) के अभाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। तात्पर्य यह है कि हम मनुष्य जाति के विषय में चिन्तन कर सकते हैं।

(4) सम्बन्धमूलक तर्क; विज्ञान विश्व के नित्य सांचे हैं। ये विश्व के मूल बिम्ब हैं तथा विश्व के सभी पदार्थ इनके प्रतिबिम्ब माने गये हैं। विश्व के सभी पदार्थ बिल्कुल इनके समान नहीं, परन्तु वे विज्ञानों का ही अनुकरण करते हैं, क्योंकि विज्ञान पूर्ण आदर्श माने गये हैं। दो सांसारिक वस्तुओं को हम एक ही नाम से संज्ञित कर सकते हैं यदि उनमें समरूपता हो या समानता हो या एक दूसरे का प्रतिरूप हो। संसार के नित्य साँचे विज्ञान सांसारिक वस्तुओं के समान भी हैं तथा असमान भी हैं।

(5) तृतीय मनुष्यमूलक तर्क; यह तर्क अभेदमूलक तर्क का ही दूसरा रूप है अभेदमूलक तर्क में 'सामान्य' की सत्ता पृथक मानी गयी है। तृतीय मनुष्यमूलक तर्क इस प्रकार हैं - जब वस्तुओं को एक ही नाम से अभिहित किया जाता है और वे वस्तुएं इतनी व्यापक नहीं हैं जितना कि उसका हैं और वह सामान्य सत्ता प्लेटो का विज्ञान है।

विज्ञान का महत्व

प्रोफेसर जेलर ने विज्ञान का महत्व बतलाते हुए प्लेटो के उपरोक्त पाँच तर्को को तीन दृष्टि से व्यक्त किया है। सत्ता की दृष्टि से उद्देश्य की दृष्टि से तथा स्वरूप की दृष्टि से। कुछ और दार्शनिकों ने दो और दृष्टिकोण बतलाए हैं ज्ञान की दृष्टि से तथा रहस्य की दृष्टि से कुल मिलाकर पाँच दृष्टिकोण से विज्ञान का महत्व बतलाया गया है। जो निम्नलिखित है :

(1) सत्ता की दृष्टि से; सत्ता की दृष्टि से विज्ञान की सत्ता है। विज्ञान वस्तुओं का सार होते हुए भी वस्तुओं से पृथक है। विज्ञान नित्य है तथा वस्तु अनित्य। वस्तुएं तो विज्ञान के प्रतिरूप हैं तथा विज्ञान ही वस्तु के स्वरूप हैं।

(2) उद्देश्य की दृष्टि से; उद्देश्य की दृष्टि से विज्ञान नित्य साँचे हैं। इन्हीं की सहायता से ईश्वर इन्द्रिय जगत के पदार्थो की सृष्टि करता है। विज्ञान ही मूल बिम्ब है तथा सम्पूर्ण जागतिक पदार्थ विज्ञान के प्रतिबिम्ब हैं। यह विकास की ओर नित्य अग्रसर हो रही है। नित्यता की प्राप्ति ही विकास का उद्देश्य है। यह विकास यांत्रिक नहीं, वरन् प्रयोजनपूर्ण है।

(3) स्वरूप की दृष्टि से; स्वरूप की दृष्टि से विज्ञान सामान्य है। ये विभिन्न वस्तुओं के सार है। ये जाति रूप है जिनका निर्माण विभिन्न व्यक्तियों के समान गुणों के ग्रहण तथा विशेष गुणों के त्याग से होता है। अतः विज्ञान का कार्य सजातियों को एकत्र करना तथा विजातियों से इनका भेद करना है।

(4) ज्ञान की दृष्टि से; ज्ञान की दृष्टि से विज्ञान ही ज्ञान के विषय हैं। प्लेटो के अनुसार ज्ञान तथा ज्ञान का विषय नित्य और अपरिणामी होना चाहिए। इन्द्रियों से तो केवल अनित्य संवेदन ही प्राप्त होते हैं। विज्ञान ही इन्हें (इन्द्रियों को) सुसम्बद्ध कर निश्चित तथा सार्वभौम बनाते है। अतः विज्ञान ही ज्ञान के यथार्थ विषय हैं। विज्ञान ही सजातीय वस्तुओं के सार है। अतः सजातीय वस्तु के साम्य तथा विजातीय के वैशम्य का ज्ञान विज्ञान से ही होता है।

(5) रहस्य की दृष्टि से; रहस्य की दृष्टि से विज्ञान शिवतत्व की अभिव्यक्ति है। प्लेटो के अनुसार विज्ञान तो वस्तु के सार हैं, परन्तु विभिन्न विज्ञानों के भी साररूप विज्ञान है। इस प्रकार विज्ञानों की तारतम्यक श्रेणी है। श्रेणी में सबसे ऊँचा परम शुभ विज्ञान है अतः नीचे के सभी विज्ञान इस परम शिव का शुभ प्रत्यय की अभिव्यक्ति है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री -पाण्डेय, डॉ0 राम सकल

पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटो से संबंधित दर्शन -ग्रन्थ

- दि फिलासफी ऑफ प्लेटो
- फ्रीतो एण्ड फीड़ो
- प्लेटो का प्रजातंत्र
- प्लेटो दि मैन एण्ड हिज वर्क

ग्रीक दर्शन -त्रिपाठी, डॉ0 सी0एल0, प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373
अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,68-71
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 07 अक्टूबर 2016

भारत-चीन सम्बन्ध-सतर्कता की आवश्यकता

डॉ. सीमा रानी*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारत-चीन सम्बन्ध-सतर्कता की आवश्यकता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सीमा रानी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भारत-चीन सम्बन्धों का इतिहास नाटकीय उतार-चढ़ाव का रहा है। 1950 का दशक 'हिन्दी चीनी भाई-भाई' के नारों से गूंज रहा था। पंचशील पर आधारित अपने घनिष्ठ सम्बन्धों के द्वारा भारत तथा चीन विश्व के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत कर रहे थे कि किस प्रकार अलग-अलग व्यवस्था को अपनाते हुए भी दो पड़ोसी देश भाई-चारे के साथ रह सकते हैं।

परन्तु 1960 के दशक के आरम्भ में भारत-चीन मित्रता की ऊष्मा वायुमण्डल में तिरोहित हो गई। पहले दलाई लामा प्रकरण तदुपरान्त सीमा सम्बन्धी विवाद ने वह कटुता पैदा की कि उसका रूप 1962 के खुले सशस्त्र संघर्ष ने ले लिया।[1] इस संघर्ष ने सारे ऐतिहासिक सम्बन्धों और पंचशील के सिद्धान्तों की बलि ले ली।

सन् 1962 के बाद से ही भारत-चीन सम्बन्धों में खटास आने लगी थी। सन् 1965 तथा 1971 के भारत-पाक युद्ध के समय भी चीन ने परोक्ष रूप से पाकिस्तान का साथ दिया। यद्यपि 1988 में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने चीन की यात्रा करके दोनों देशों के बीच की दरार को कम करने की कोशिश की।[2] इस यात्रा के दौरान वास्तविक नियंत्रण रेखा पर शान्ति बनाये रखने तथा सीमा विवाद का समाधान खोजने के लिए एक संयुक्त कार्यकारी ग्रुप (Joint working Group) की स्थापना का निर्णय लिया गया।

भारत-चीन सम्बन्धों को दिसम्बर 1991 में चीन के प्रधानमंत्री ली पेंग (Li Peng) की भारत यात्रा तथा भारत के राष्ट्रपति आर वेंकटरमण की मई 1992 की चीन यात्रा ने और पुख्ता किया किन्तु सकारात्मक ठोस कदम प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव की चीन यात्रा के अवसर पर उठाया गया, जब सीमा विवाद का समाधान खोजने के लिए संयुक्त कार्यकारी ग्रुप की सहायता करने के लिए एक चीन-भारतीय विशेषज्ञ दल (Sino Indian Expert Group) को नियुक्त करने का निर्णय लिया गया।[3] 2003 में भारत ने 'तिब्बत' पर चीनी दावे को भी स्वीकार कर लिया। यद्यपि ये सुरक्षा की दृष्टि से जल्दबाजी में लिया गया निर्णय था। चीन ने तिब्बत पर जबरन कब्जा जमाकर भारत के लिए सुरक्षा, कूटनीति और आर्थिक क्षेत्रों समेत प्रत्येक

* असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र, दमयन्ती राज आनन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय [बिसौली] बदायूँ (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

मोरचे पर गंभीर खतरा पैदा कर रखा है। सन् 2006 में चीनी राष्ट्रपति हू जिंताओ की भारत यात्रा के दौरान एक तिब्बती युवक ने आत्मदाह की कोशिश की जो तिब्बत की आजादी की मांग कर रहा था।[4] परन्तु भारत ने चीन की संवेदना का ध्यान रखते हुए तिब्बती युवको को नजरबंद कर दिया। यद्यपि चीन जेसे असंवेदनशील देश के लिए ऐसी संवेदना का कोई मतलब नहीं था।

तिब्बत पर कब्जे की वजह से चीन आज पाकिस्तान नेपाल और म्यांमार के रास्ते भारत के खिलाफ गतिविधियों का संचालन कर रहा है। इसी तरह नेपाल के रास्ते भारत की सीमा तक सड़के लाकर और वहॉ अपने माओवादी आतंकवादियों की जड़े जमाकर चीन ने हमारी सुरक्षा के लिए एक नई चुनौती खड़ी कर दी है। तिब्बत के भीतर तक रेलगाड़ी लाकर उसने भारत की सुरक्षा चिन्ताओं को दुगुना कर दिया है। सिक्किम में नाथू-ला के रास्ते व्यापार सुविधायें लेकर चीन ने भारत के सभी सात उत्तर-पूर्वी राज्यों को भारत से काट देने की आशंकाओं को नया आधार दे दिया है।[5] इसके अलावा वह अरूणाचल प्रदेश पर भी अपना दावा ठोक रहा है।

1937 में सर्वे ऑफ इण्डिया ने पहली बार अपने नक्शे में 'मैकमोहन लाइन' को आधिकारिक सीमा रेखा के रूप में दर्शाया था और इस विवादित क्षेत्र को भारतीय हिस्सा माना था। इसके बाद 1938 में ब्रिटेन द्वारा अधिकारिक तौर पर शिमला समझौते के प्रकाशन के बाद इस क्षेत्र पर भारतीय अधिकार सिद्ध हो गया था। परन्तु 1949 में चीनी क्रांति के बाद स्थापित साम्यवादी सरकार ने इस क्षेत्र पर अपना अधिकार जताना आरम्भ कर दिया और तब से लेकर अब तक यह दोनों देशों के बीच विवाद का मुद्दा बना हुआ है।[6] अतः अब समय आ चुका है कि चीनी नेताओं को हर बार रियायतें देकर उनसे रिश्ते सुधारने की उम्मीद करने वाली हमारी सरकार तिब्बत और अरूणाचल प्रदेश के महत्व को समझे तथा चीन के प्रति तुष्टिकरण की नीति में परिवर्तन करे।

चीन इस समय पाकिस्तान का सबसे घनिष्ठ मित्र है और इसीलिए पाकिस्तान अमरीकी धमकियों की परवाह नहीं करता है। चीन-पाक के बढ़ते सामरिक सम्बन्ध भारत के लिए निश्चित रूप से चिन्ता का विषय हैं। शायद वीजिंग स्वयं को जनरल अयूब खॉ का ऋणी महसूस करता है, जिन्होंने विवादित कश्मीर के पाकिस्तान के कब्जे वाले 200 वर्गमीटर क्षेत्र को चीन को सौंप दिया था।[7] यही कारण है कि चीन पाकिस्तान की हर गलत कदम का समर्थन करता है। चीन ही पहला गैर इस्लामी राष्ट्र था जिसने जनरल मुशर्रफ की सैनिक हुकूमत को एक तरह से मान्यता प्रदान कर दी थी।[8] अतः आज पाकिस्तान पूर्ण रूप से चीन पर निर्भर है। आज पाकिस्तान अमरीका की तुलना में चीन के अधिक करीब है। ज्ञातव्य है कि श्रीमती बेनजीर भुट्टो सन् 1988 में चीन गई थी और उन्होंने इस यात्रा से पहले यह कहा था कि यदि उनके पिता श्री जुल्फिकार अली भुट्टो को पाकिस्तान की सत्ता से हटाकर उनकी हत्या न कर दी जाती तो आज से एक दशक पूर्व ही सन् 1978 में ही पाकिस्तान परमाणु अस्त्र उत्पादक देश बन जाता।[9] यह कथन पूर्ण रूप से सत्य भी है क्योंकि चीन 70 के दशक से ही पाकिस्तान को यूरेनियम परिष्कृत करने में पूर्ण तरीके से सहयोग कर रहा है।

चीन पाकिस्तान को परमाणु रिएक्टर स्थापित करने में मदद दे रहा है। परमाणु सामग्री के अतिरिक्त चीन ने पाकिस्तान को कठिन तकनीकी डिजाइन की अंक सामग्री एवं प्रशिक्षण जैसी सुविधा भी दी। वास्तव में चीन पाकिस्तान के लिए वही कर रहा है जो एक समय रूस ने चीन के लिए किया था। पाकिस्तानी प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम को भी चीनी तकनीक प्राप्त हुई है। चीन पाकिस्तान को परमाणु व प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम में ही सहयोग नहीं दे रहा है बल्कि पाकिस्तान की तीनो सेनाओं को अत्याधुनिक शस्त्रों से लैंस कर रहा है। चीन ने पाकिस्तान को जे-7 श्रेणी के युद्धक विमान भी प्रदान कर रखे है।[10]

स्पष्ट है कि चीन प्रारम्भ से ही पाकिस्तान को भारत के बराबर या उससे ऊँचे दर्जे में बनाए रखना चाहता है। अब यह बात सामने उभरकर आ चुकी है कि चीन पाकिस्तान की सैनिक शक्ति बढाकर उसके अनुपात में भारत को कमजोर बनाये रखना चाहता है। चीनी नीति का ही परिणाम है कि पाकिस्तान दक्षिण एशिया में एक शक्तिशाली सैन्य ताकत के रूप में उभर रहा है। इसलिए चीन-पाक के गठजोड़ को नजरअंदाज करना भारत के लिए समझदारी का कार्य नहीं होगा। चीन भारत के साथ दोस्ती की चाहे जितनी बाते करे लेकिन जहॉ पाकिस्तान का सवाल आता है वहॉ वह पाकिस्तान के साथ है और परिणाम यह होता है कि उसकी नीति भारत विरोधी हो जाती है। मुम्बई पर आतंकवादी हमले के समय पर भी उसने इसी नीति का परिचय दिया।

भारत और चीन सीमा विवाद भी जगजाहिर है। दोनों देशों के बीच 3800 किलोमीटर की साझा सीमा में लद्दाख से लेकर अरूणाचल तक कई विवाद है। 1962 की लड़ाई में वह लद्दाख की 12 हजार वर्ग किलोमीटर जमीन पर कब्जा कर ही चुका है। पाक अधिकृत कश्मीर में 5000 वर्ग किलोमीटर जमीन उसके पास है।[11] चीन 'मैकमोहन रेखा' का भी सम्मान नहीं करता। जब ब्रिटिश शासन की ओर से वर्ष 1914 में सर हेनरी मैकमोहन ने इस रेखा की घोषणा की थी, तब संभवत चीन ने उसे नहीं माना था।[12] वास्तव में भारत और चीन दो ऐसे देश है, जिनके बीच न तो अन्तर्राष्ट्रीय रूप से मान्यता प्राप्त सीमा है और न पारस्परिक रूप से स्वीकृत नियंत्रण रेखा ही है। करीब दो दशकों की सीमा वार्ता के बावजूद चीन वास्तविक नियंत्रण रेखा को परिभाषित करने या सीमा विवादों पर प्रगति करने पर सहमत नहीं हुआ है।[13] अक्साई चिन विवाद भी इसका एक उदाहरण है।

ब्रह्मपुत्र से पानी लेने की योजना पर चीन कुछ समय से विचार कर रहा है। यह चीन की विशाल 'साउथ नोर्थ वाटर लिंक' योजना का हिस्सा है। चीन की इस कोशिश को नदी में 'पानी की डकैती' के रूप में देखा जा सकता है। एक रिपोर्ट के अनुसार, चीन शूमाटन प्वाइंट पर प्रस्तावित बांध के लिए ब्रह्मपुत्र से पानी लेने की योजना बना रहा है। यह वह जगह है जहॉ भारतीय और यूरेशियन प्लेटे मिलती है, जिसकी वजह से भारतीय हिस्से में भूस्खलन या भूंकम्प जैसी गतिविधयॉ होने की आशंका ज्यादा रहती है। इसके अतिरिक्त एक खुफिया रिपोर्ट ने हिमाचल प्रदेश सरकार की नींद उड़ा दी है। इस रिपोर्ट के अनुसार चीन सतलुज और उसकी सहायक नदियों पर तिब्बत में कई बिजली परियोजनाओं का निर्माण कर रहा है। इसके कारण बरसात के मौसम में यह नदियॉ हिमाचल में तबाही ला सकती है।[14] अतः चीन से सम्बन्धों को सुधारते समय हम इन बिन्दुओं को नजरअंदाज नही कर सकते।

यद्यपि सन् 2005 में चीनी प्रधानमंत्री बेन जियाबाओ ने भारत यात्रा की तथा सिक्किम पर अपनी दोवदारी को नकारा। नवम्बर 2006 में चीनी राष्ट्रपति हू जिंताओ की भारत यात्रा उल्लेखनीय रही।

इस यात्रा के दौरान दोनो देशों के मध्य आर्थिक-राजनीतिक सम्बन्ध मजबूत बनाने तथा सीमा-विवाद सुलझाने जैसे अहम् मुद्दों पर सार्थक बातचीत हुई।[15] वर्तमान में भी दिसम्बर 2010 में चीनी प्रधानमंत्री बेन जियाबाओ की भारत यात्रा भी सार्थक परिणाम की ओर थी। चीन के प्रधानमंत्री बेन जियाबाओ के इस बयान को खास महत्व दिया गया कि भारत और चीन के 2,200 साल पुराने रिश्तों में 99.9 प्रतिशत हिस्सा दोस्ती का है और केवल 0.01 प्रतिशत हिस्सा ही कड़वाहट का है जिसे भूल जाना चाहिए।[16] अतः यह 0.01 प्रतिशत हिस्सा ही भारत चीन सम्बन्धों का आधार है। हमें भारत-चीन सम्बन्धों को परिभाषित करते हुए हमें चीनी प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई के नारे 'हिन्दी-चीनी भाई भाई' के साथ इसकी आड़ में पीठ में भोंके गए छुरे के जख्मों को नहीं भूलना चाहिए।

भारत-चीन दोस्ती के समर्थक इस बात पर फूले नहीं समा रहे है कि पिछले 20 वर्षो में दोनों देशों के बीच व्यापार तीन अरब डॉलर से बढकर 60 अरब डॉलर हो गया हैं पर यह एक पक्षीय व्यापार है जिसमें चीन ने भारतीय बाजार को पाटकर यहॉ के खिलौना, इलैक्ट्रॉनिक सामान, हथकरघा, साड़ी तथा प्रिटिंग जैसे सैकड़ो उद्योगों के लाखों परिवारों का धंधा चौपट कर दिया है।[17]

वर्तमान में भी चीन की गतिविधियॉ भारत के सामरिक तथा प्रतिरक्षा हितों के अनुकूल नहीं कही जा सकती। भारत को सामरिक मोर्चे पर चारों तरफ से घेरने की तैयारी चीन काफी पहले से कर रहा है। भारत से जुडी तिब्बत की सीमा पर चौड़ी लेन वाली सड़कों का जाल बिछाया जा रहा है। चीन भारत से युद्ध की स्थिति में इसका उपयोग बड़ी मात्रा में सैन्य साजों सामान ले जाने में कर सकता है। इस रणनीति में चीन भारत के पड़ोसियों पाकिस्तान, म्यामांर, नेपाल, भूटान आदि को सम्मिलित करना चाहता है। वर्ष 2001 में चीन ने पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत में 'ग्वादर बंदरगाह' का निर्माण कार्य शुरू कर इसका संकेत दे दिया है। म्यामांर के सहयोग से 'नौसैनिक अड्डा बनाकर चीन ने हिन्द महासागर में भी भारत को घेरने का पूरा बंदोबस्त कर रखा है। इसके अतिरिक्त भारत के अन्य पड़ोसी देशों नेपाल, भूटान, श्रीलंका से भी चीन रिश्ते बनाने की पुरजोर कोशिश कर रहा है।

चीन ने जम्मू कश्मीर के भारतीय पासपोर्ट धारकों को अलग से वीजा जारी कर इस विवाद को और ज्यादा बढ़ा दिया है। इसके साथ ही चीन ने कश्मीर को एक अलग देश के रूप में भी दिखाना शुरू कर दिया हैं। चीन ने भारत को बिना

बताये चीन-नेपाल सीमा के समीप एवरेस्ट की घाटी में एक भूंकप निगरानी स्टेशन की स्थापना की है जबकि भारत काफी लंबे समय से साझेदारी में ऐसे स्टेशन की स्थापना की बात चीन से कर रहा था। इस केन्द्र के जरिए चीन अब भारतीय परमाणु गतिविधियों पर भी निगाह रखने में सफल रहेगा।[18]

अतः भारत को चीन से सम्बन्ध स्थापित करते समय सतर्कता पूर्ण नजर रखनी होगी। यद्यपि भारत अधिक नरम और समझौतावादी दिखता है। भारत की उत्तरी कमान के प्रमुख जनरल जसवाल को चीन यात्रा के लिए वीजा देने से इन्कार करने पर हमारी सरकार ने एक सख्त कदम उठाया। चीनी लेखक लियू शियाओवो को नोवल शांति पुरस्कार देने का समर्थन करके भारत ने विजिंग के दबाव के सामने न झुकने का परिचय दिया।[19] वर्तमान में नरेन्द्र मोदी की विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य अपने पड़ोसी देशों के साथ द्विपक्षीय सम्बन्धों को स्थापित करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर भारत की उपस्थिति दर्ज कराना है तथा भारत को पूर्ण रूप से विकसित देशों की श्रेणी में लाना है। भारत आतंकवाद को भी जड़ से खत्म करने के लिए प्रतिबद्ध है। लेकिन बिना अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के यह सम्भव नहीं है। भारत की महत्वपूर्ण कूटनीति उपलब्धि आतंकवाद पर चीन का सहयोग भी है। राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी के चीन दौरे पर चीन ने कहा कि वह संयुक्त राष्ट्र में आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में भारत का साथ देगा।[20]

इस परिदृश्य में भारत को एक बार फिर से अपनी चीन नीति की समीक्षा करनी होगी। यदि भारत को सचमुच चीन के साथ सम्बन्ध सुधारने है, तो उसे अपनी दब्बू परम्परा को त्यागकर दो टूक बात करनी होगी। तभी भारत और चीन सम्बन्धों का भविष्य सम्भव है।

संदर्भ ग्रंथ

[1] *''भारत-चीन सम्बन्धी-गाड़ी पटरी पर'',* प्रतियोगिता दर्पण, सितम्बर-2000, पृष्ठ संख्या 258

[2] *समसामयिकी महासागर,* मासिक पत्रिका, दिसम्बर-2008, पृष्ठ संख्या 43

[3] *''भारत-चीन सम्बन्धी-गाडी पटरी पर'',* प्रतियोगिता दर्पण, सितम्बर-2000, पृष्ठ संख्या 258

[4] *''तिब्बत के सवाल पर चुप्पी ठीक नही'',* अमर उजाला, मुरादाबाद, 24 नवम्बर 2006

[5] देखें, वही संदर्भ

[6] *समसामयिकी महासागर,* मासिक पत्रिका, दिसम्बर-2009, पृष्ठ संख्या 39

[7] *''भारत अनावश्यक रूप से बचाव की राह पर'',* अमर उजाला, मुरादाबाद, 14 जून 2000

[8] *''चीन में पड़ोसी जनरल'',* अमर उजाला, मुरादाबाद, 21 जनवरी 2000

[9] *''भारत-चीन सम्बन्ध-सतर्कता जरूरी'',* प्रतियोगिता दर्पण, सितम्बर-1996, पृष्ठ संख्या 258

[10] देखें, वही संदर्भ

[11] *''चीन के रहस्यमयी मन में क्या कुछ हुआ है?'',* अमर उजाला, मुरादाबाद, 6 मई 2000

[12] *''वह घाव अभी भरा नहीं'',* अमर उजाला, मुरादाबाद, 2 जुलाई 2003

[13] *''केवल शक्ति की भाषा समझता है चीन'',* अमर उजाला, मुरादाबाद, 11 फरवरी 2000

[14] *समसामयिकी महासागर,* मासिक पत्रिका, दिसम्वर-2009, पृष्ठ संख्या 40

[15] *समसामयिकी महासागर,* मासिक पत्रिका, दिसम्वर-2008, पृष्ठ संख्या 43

[16] *''चीन से सीधी बात'',* अमर उजाला, मुरादाबाद, 16 दिसम्बर 2010

[17] देखें, वही संदर्भ

[18] *समसामयिकी महासागर,* मासिक पत्रिका, दिसम्वर-2009, पृष्ठ संख्या 38-39

[19] *''चीन से सीधी बात'',* अमर उजाला, मुरादाबाद, 16 दिसम्बर 2010

[20] *''आतंकवाद के खिलाफ यू.एन. में भारत के साथ आएगा चीन'',* 28 मई 2016, अमर उजाला, मुरादाबाद

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,72-77
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 25 सितम्बर 2016

आधुनिक भारत में महान निर्माता सरदार बल्लभ भाई पटेल

डॉ. अन्जू लता श्रीवास्तव*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *आधुनिक भारत में महान निर्माता सरदार बल्लभ भाई पटेल* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अन्जू लता श्रीवास्तव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

स्वतंत्रता प्राप्त के समय देशी रियायतों की समस्या का स्थायी हल एक महत्वपूर्ण एवं गम्भीर चुनौती थी। ब्रिटिश भारत में न केवल गर्वनरों के अधीन प्रान्त थे। वरन छोटी-बड़ी 565 रियासतें थी जिनके पास 715,964 वर्ग मील क्षेत्रफल था तथा सन् 1941 की जनगणना के अनुसार 93,189,233 जनसंख्या थी। जनसंख्या तथा आकार की दृष्टि से एक रियासत दूसरे से भिन्न थी। कुछ रियासतों का क्षेत्रफल हजारों वर्ग मील में था, जबकि अधिकांश रियासतें अत्यधिक छोटी थी। कठियाबाद में एक रियासत विजानोनेस का क्षेत्रफल मात्र 0.29 वर्ग मील तथा जनसंख्या 206 थी। वार्षिक आय रूपये 50,000 थी। सम्पूर्ण राष्ट्र का अवैज्ञानिक आधार पर छोटे बड़े खण्डों में विभक्त रहना अधिक एवं सामाजिक प्रगति में बाधक था। राजनैतिक शक्ति के मामले में एक रियासत दूसरी रियासत में भिन्न था। परन्तु कोई भी रियासत राजनैतिक दृष्टि से स्वतन्त्र सार्वभौतिकता का प्रयोग नहीं करती थी और ब्रिटिश सरकार की अधिसत्ता पूर्ण थी।

24 मार्च 1946 को कैबिनेट मिशन भारत आया। भारतीय समस्या का सर्वमान्य हल ढूढने के उद्देश्य से कैबिनेट मिशन राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों, अन्य गणमान्य व्यक्तियों तथा देशी रियासतों के प्रतिनिधियों से सामूहिक एवं व्यक्तिगत रूप से मिला। अप्रैल 1946 को कैबिनेट मिशन के समक्ष अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए भोपाल के नवाब ने कहा कि ''भारत की रियासतें अधिक से अधिक प्रभुत्व के साथ अपना अस्तित्व कायम रखना चाहता है। शासक वर्ग के विचारों को प्रकट करते हुए नवाब ने कहा कि यदि भारत के दो खण्ड सम्भव है तो रियासतों के लिये तीसरा खण्ड न बनाने का कोई कारण नहीं दिखता। अन्त में उन्होंने इस बात पर बल दिया कि रियासतों पर सर्वोच्च सत्ता भारत सरकार को न सौपी जाय।

मिशन से जितने भी रियासतों के प्रतिनिधि मिले उनकी मुख्य माँगे थी कि सर्वोच्चसत्ता नये शासन को न सौपा जाये, रियासतों को किसी भी संघ में सम्मिलित होने के लिए बाध्य न किया जाये तथा उन्हें अपना अलग संघ बनाने में किसी प्रकार की आपत्ति न हों। इसके अतिरिक्त भारत में जो भी सरकार बने वह रियासतों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करे।

* चकिया, चन्दौली (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

रियासतों की समस्या के विषय में 12 मई 1946 को कैबिनेट मिशन द्वारा चेम्बर ऑफ प्रिंसेज के चान्सलर को दिये गये स्मरण पत्र।

16 मई 1946 की कैबिनेट मिशन योजना तथा मिशन के सदस्यों के आश्वासनों से देशी नरेशों को अपनी अलग सत्ता बनाये रखने की प्रेरणा मिली। चेम्बर ऑफ प्रिंसेज की ''समझौता समिति'' से विचार विमर्श हेतु 21 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा ने एक छः सदस्यीय वार्ता समिति गठित की जिसके सदस्य थे- जवाहर लाल नेहरू, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, सरदार बल्लभ भाई पटेल, पट्टाभि सीता रमैय्या, शंकरराव देव एवं एन0 गोपालास्वामी आयंगर।

इधर 29 जनवरी 1947 को बम्बई में चेम्बर ऑफ प्रिंसेज की स्थायी समिति ने एक ऐसा प्रस्ताव पारित किया, जिसमें कुछ विशिष्ट अधिकारों की माँग का भारत संघ में मिलने का अन्तिम निर्णय रियासतों का हो। संवैधानिक मामलों पर विचार-विमर्श में भाग लेने मात्र से रियासतों का भारत संघ में सम्मिलित होना अनिवार्य न हो। यद्यपि कुछ शासक वर्ग इस प्रस्ताव से पूर्णतः सहमत न थे और बड़ौदा के शासक ने तो व्यक्तिगत रूप से संविधान सभा में सम्मिलित होने का निश्चय कर लिया, परन्तु अधिकांश शासक प्रस्ताव के पक्ष मे ही थे, ऐसे शंका के वातावरण में दोनों वार्त्ता समितियों की बैठके 8-9 फरवरी 1947 हुई। यद्यपि भोपाल के नवाब अपनी प्रमुख माँगों की पूर्ति हेतु अडिग थे। परन्तु पटियाला नरेश सर यागवेन्द्र सिंह के कहने सुनने और नेहरू तथा सरदार पटेल के आश्वासन से यह तय हुआ कि चेम्बर और संविधान सभा के सचिव मिलकर रियासतों के लिए निश्चित 93 स्थानों के वितरण की योजना बनाये। यह बैठक 1 मार्च 1947 तक के लिए स्थगित हो गयी।

20 फरवरी 1947 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली द्वारा जून 1948 तक भारत को स्वतंत्र करने को घोषणा तथा देशी रियायतों की सर्वोच्य सत्ता से सम्बन्धित अधिकारों और दायित्यों को ब्रिटिश भारत की किसी सरकार को न सौपने के स्पष्ट आश्वासन से वार्त्ता समितियों के दोनों पक्ष आभावित हुए। 15 अप्रैल 1947 को बड़ौदा में पटेल ने राजाओं को सलाह दी कि वे कांग्रेस से भयभीत न हो तथा संविधान सभा में भाग ले। सरदार ने चेतावनी देते हुए कहा- ''अन्त में हारकर आयेंगे वह शोभा नहीं देगा शादी के बाजे शादी के वक्त अच्छे लगते हैं, मौते के समय शोभा नही देते।

16 अप्रैल 1947 को सूरत में भाषण देते हुए सरदार पटेल ने राजाओं की ''ठहरो और देखो'' नीति की आलोचना करते हुए कहा कि वे एक ओर यह कहते है कि रियासतों की जनता अभी शासनाधिकार संभालने के लायक नहीं है तथा दूसरी ओर अभी सम्राट की सरकार से सीधे सम्बन्ध रखने की बातें करते हैं। लेकिन सम्राट ने स्वयं घोषित कर दिया है कि सार्वभौमिकता तो समाप्त हो जायेगी। हम राजाओं को समाप्त नहीं करना चाहते लेकिन हम चाहते हैं कि वे अपनी प्रजा को उत्तरदायी शासन स्वयं दे दे। सरदार पटेल ने राजाओं को सलाह दी कि संविधान सभा में तत्काल अपने निर्वाचित सदस्य भेज दें। 28 अप्रैल 1947 को संविधान सभा के अधिवेशन में बड़ौदा, जयपुर, रीवॉ, कोचीन, बीकानेर, जोधपुर, ग्वालियर एवं पटियाला के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। चेम्बर ऑफ प्रिंसेज के इतिहास में प्रथम बार पारस्परिक एकता भंग हुई और रियासतों के संगठित असहयोग क्षत-विक्षत होने लगे। सत्ता हस्तान्तरण की गति देने के लिए भेजे गये नये वायासनाय लार्ड माउण्टबैटन शाही परिवार से सम्बन्धित थे। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री एटली भी जानते थे कि माउण्टबैटन देशी राजाओं में अधिक विश्वास करेंगे तथा देशी राजा उनकी नियुक्ति से प्रसन्न होंगे। माउण्ट बैंटन का जीवन परिचय लिखने वाले लेखक ने लिखा है कि- ''माउण्ट बैटन ने अनुभव किया कि उनके सामने तीन विकल्प थे- 1. वह इस समस्या की उपेक्षा करें ताकि रियासतें स्वतंत्रता के पश्चात् स्वयं अपना भविष्य तय करें। 2. नैपोलियन पद्धति अपनाकर वर्तमान ईकाइयों से नये राज्यों का निर्माण करें। 3. भारत तथा पाकिस्तान में देशी राज्यों के विलय हेतु कार्य करें।

जब माउण्ट बैटन ने भारत विभाजन का निर्णय ले लिया तो भावी योजना को अन्तिम रूप देने के पूर्व उस प्रारूप को नेहरू को दिखाया जिसमें भारत मात्र दो हिस्सों में नहीं वरन् अनेक छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित था। माउण्टबैटन ने अनुभव किया कि देशों रियासतों को स्वतंत्र छोड़ना उचित नहीं होगा। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि राजाओं के मध्य गम्भीर मतभेद है। यहाँ एक ओर भोपाल तथा ट्रावनकोर के शासक स्वतंत्रता के पक्ष में थे। वहाँ दूसरी ओर बीकानेर जयपुर जोधपुर पटियाला और ग्वालियर के शासक संविधान सभा में जाने के इच्छुक थे।

हैदराबाद के निजाम मुहम्मद अली जिन्ना के साथ समझौता करके पाकिस्तान में शामिल होना चाहते थे। इस विरोधाभास में माउण्टबैटन ने 13 जून 1947 को एक बैठक बुलाई, जिसमें कांग्रेस की ओर से जवाहर लाल नेहरू, सरदार बल्लभ भाई पटेल तथा आचार्य कृपलानी। मुस्लिम लीग की ओर से जिन्ना, लियाकत अली व अब्दुल खॉ निश्तर। सिक्खों की ओर से बलदेव सिंह उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त भारत सरकार के राजनैतिक सलाहकार सरकानरेड कारफील्ड भी उपस्थित थे। बैठक में वायसराय ने प्रस्ताव रखा कि ब्रिटिश सत्ता के अन्त के साथ ही राजनैतिक विभाग बन्द हो जायेगा। नेहरू ने विरोध करते हुए कहा कि सार्वभौमिकता का अन्त न तो रियासतों को पूर्ण स्वतंत्र होने का अधिकार देता है और न ही इसमें राजनीतिक विभाग या उसके प्रतिनिधियों के कार्यों का अन्त होता है। सरकानरेड तथा जिन्ना ने नेहरू के मत का विरोध किया। काफी बाद-विवाद के पश्चात देशी राज्यों से उत्पन्न समस्या को सुलझाने के लिये दो नये राज्य विभाग की स्थापना 27 जून 1947 को की गयी। भारतीय राज्य विभाग लौह पुरुष सरदार बल्लभाई पटेल के अधीन किया गया तथा रियासतों की वैधानिक स्थिति की पूर्ण जानकारी रखने वाले वी0पी0 मेमन विभाग के प्रमुख सचिव बने। राज्य विभाग के सामने बड़ी कठिन समस्या थी जिसे सरदार पटेल तथा बी0पी0 मेमन ने कठोर परिश्रम तथा राजनीतिक चुस्ती से सुलझाया। इस दिशा में उठाए गये कदमों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है- 1. एकीकरण, 2. अधिमिलन, 3. प्रजातंत्रीकरण।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय लगभग 450 देशी राज्य थे। ये आकार आबादी तथा आशासन के सम्बन्ध में एक दूसरे से बहुत भिन्न थे। यह आवश्यक था कि छोटे राज्यों को पड़ोस के बड़ राज्यों या प्रान्तों में मिला दिया जाय और उन्हें काम चलाऊ प्रशासनिक इकाई का रूप दिया जाय। एकीकरण की इस प्रक्रिया द्वारा सभी देशी रियासतों के अन्त में 9 (नौ) 'क' वर्ग के राज्य और 10 (दस) ख वर्ग के राज्य बन गयी।

क वर्ग के राज्यो में बड़ी देशी रियासतों को रखा गया। हैदराबाद, जम्मू और काश्मीर, मैसूर, मध्य भारत राजस्थान, पेप्सू, सौ राष्ट्र और ट्रावनकोर-कोचीन।

ख वर्ग के राज्यों में अजमेर, कुर्ग, दिल्ली, इन देशी रियासतों का भारत संघ में विलयन स्वतन्त्रता के ठीक पूर्व की परिस्थितियों में एक ऐसा चमत्कार था जिसे देख कर विदेशी राजनीतिज्ञ भी आश्यर्य चकित रह गये। परन्तु यह प्रथम क्रान्तिकारी कार्य था। जिससे रियासतों की तीन क्षेत्रों में भारतीय अधिराज्य में सम्मिलित कर दिया था। एक यथार्थवादी राजनीतिक सरदार पटेल भली-भाँति जातने थे कि पूर्व विलयन तभी सम्भव होगा जब प्रशासनिक राजनीतिक तथा संवैधानिक रूप में भारतीय संघ में रियासती जनता प्रान्तीय जनता के समकक्ष स्थान प्राप्त कर लेगी। इस कार्य में अनेक बाधायें थी। ऐसी रियासतों में उत्तरदायी सरकार स्थापित करना असम्भव था। अलग-अलग रियासतों में राजनैतिक चेतना भी भिन्न-भिन्न थी। कुछ में शासन तत्व वैज्ञानिक आधारों पर सुसंगठित हो चुका था पर अधिकांश में मध्यकालीन समान्तशाही जैसी स्थिति थी।

ऐसी विषम अवस्थाओं वाले क्षेत्रों को राजनैतिक और प्रशासनिक दृष्टि से सुसंगठित करने के असम्भव से कार्य को सरदार पटेल ने अपनी लगन और कर्मठता से सम्भव बनाया। विलय कुभ में लगभग 355 देशी रियासतों भारतीय संघ में सम्मिलित हुई। उनमें हैदराबाद और मैसूर के आकार पूर्ववतीय रखे गयें। जम्मू और काश्मीर को आवेश लिखित के आधार पर वहाँ की संविधान सभा द्वारा निर्णय करने के पूर्व तक सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध और परिवहन लिए ही भारत के प्रविष्ट माना गया था। 216 रियासतों को प्रान्तों में मिला दिया गया। 5 रियासतों (विलासपुर, कक्ष, त्रिपुरा, मणिपुर, और भोपाल) को केन्द्रीय सरकार के प्रशासन में रखा गया। पंजाब की 21 पहाड़ी रियासतों को मिलाकर हिमायल प्रदेश बनाया गया। जिसे प्रारम्भ में केन्द्रीय सरकार के प्रशासन में रखा गया। 310 रियासतों को 6 संघों में परिवर्तन कर दिया गया। जैसे अजमेर, कुर्ग, भोपाल, विलासपुर, कुच, बिहार, दिल्ली, कक्ष, मणिपुर और त्रिपुरा।

अधिमिलन

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 ई0 द्वारा राज्यों को यह विकल्प दिया गय कि या तो भारत अथवा पाकिस्तान में सम्मिलित हो जाय या स्वतंत्र हो जाय। उनकी भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि उनके सामने किसी एक अधिराज्य में सम्मिलित होना अनिवार्य सा हो गया।

स्वतंत्र एवं सार्वभौम राष्ट्र के राज्य में रहना उनके लिए सम्भव नहीं था। भारत सरकार के राज्य विभाग ने तुरन्त एक वक्तव्य प्रसारित कर देशी रियासतों के प्रति सरकार के रूप को स्पष्ट किया। इन वक्तव्यों में कहा गया कि भारत सरकार भारत संघ में देशी नरेशों को सम्मानपूर्ण स्थान देना चाहती है। नरेशों के व्यक्तिगत अधिकारों तथा सुविधाओं की रक्षा की जायेगी, बशर्ते कि संविधानिक प्रधान के रूप में रहे तथा लोकप्रिय शासन के मार्ग में रोड़ा न बने। ''वक्तव्य में यह भी कहा गया कि- ''देशी राज्य सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध, आवागमन के विषयों को भारतीय संघ को सौंपकर इसका सदस्य बन जाये। इस वक्तव्य में देशी रियासतों और ब्रिटिश प्रान्तों के बीच अभिन्न सांस्कृतिक आर्थिक और दूसरे प्रकार की एकता के बन्धनों पर प्रकाश डाला गया। रियासतों को यह बतलाया गया कि यह अवसर ऐतिहासिक दृष्टि से एक युगान्तर स्थापित करने वाला है यदि रियासतों ब्रिटिश प्रान्तों से सम्बंद्ध होना चाहेगी तो सारे राष्ट्र कल्याण होगा। अब था इस भूखण्ड में आराजकता का प्रसार होगा। जो आगे चल कर सबसे बड़ा पतन का कारण होगा। इस वक्तव्य का देशी रियासतों पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ा। 15 जुलाई 1947 ई0 को नरेन्द्र मण्डल की बैठक में लार्ड माउण्टबैटन ने देशी नरेशों से यह अपील की कि कम से कम सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध तथा आवागमन के मामलों मे वे किसी एक अधिराज में अवश्य मिल जाये। भारत सरकार की नीति सरदार पटेल की राजनीतिक चुस्ती लार्ड माउण्ट बैटेन के परामर्श तथा अन्य कारणों के चलते एक-एक कर देशी रियासतों ने भारतीय संध में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। केवल जूनागण, कश्मीर तथा हैदराबाद ने भारतीय संघ में प्रवेश का विरोध किया।

सरदार बल्लभ भाई पटेल के अथक प्रयास से 20 फरवरी सन् 1949 में जूनागढ़ सौ राष्ट्र संघ के अधीन हो गया। हैदराबाद भी भारत संघ में 1 अक्टूबर सन् 1948 को सम्मिलित हो गया। काश्मीर यदि शेख अब्दुल्ला के प्रभाव से जवाहर लाल नेहरू कश्मीर विभाग सरदार पटेल के रियासत विभाग से न ले तो कश्मीर कभी भी एक समस्या न बनती जैसा कि अब बन गयी। काश्मीर की समस्य भारत पाकिस्तान के मध्य सबसे अधिक उलझी समस्या रही है। भारत के उत्तर पश्चिम सीमा पर स्थित यह राज्य भारत तथा पाकिस्तान दोनों को जोड़ते हैं। सामाजिक दृष्टि से काश्मीर की सीमा अफगानिस्तान तथा चीन से मिलती है तथा सोवियत संघ की सीमा कुछ ही दूरी पर है कश्मीर का बहुसख्य भाग लगभग 79 प्रतिशत मुस्लिम धर्मी था पर वहाँ के अनुवांशिक शासक हिन्दू थे।

कैबिनेट मिशन के जाने के बाद पटेल ने काश्मीर समस्या पर विशेष रूचि ली। 3 जुलाई 1947 को काश्मीर के महाराजा हरीसिंह को पत्र लिखकर सरदार ने नेहरू की काश्मीर में गिरफ्तारी तथा शेख अब्दुल्ला व नेशनल क्रान्फ्रेंस के कार्यकत्ताओं को लगातार बन्दी बनाये रखने पर शोक प्रकट किया। अपने पत्र मे सरदार पटेल ने कहा- ''मैं आपकी रियासत की भौगोलिक दृष्टि से नाजुक स्थिति को समझता हूँ कि कश्मीर का हित अविलम्ब भारतीय संघ तथा संविधान सभा में सम्मिलत होने में दी है। सरदार पटेल ने निराशा प्रकट की कि लार्ड माउण्टबैटन को समय देकर भी महाराजा ने बिमारी का संदेश भेजकर उनसे भेट नहीं की। 4 व 5 जुलाई को पटेल की काश्मीर के प्रधानमंत्री पं0 रामचन्द कक से भेट हुई।

ब्रिटिश सत्ता के स्थानान्तरण के समय कश्मीर नरेश महाराजा हरीसिंह ने एक स्वतंत्र काश्मीर राष्ट्र भी कल्पना की थी तथा दुविधापूर्ण नीति अपनाकर भारत तथा पाकिस्तान दोनों से ''यथा स्थिति समझौता'' करना उचित समझा।

पाकिस्तान ने कश्मीर मे सरकार के 'यथास्थिति समझौते को स्वीकार कर लिया तथा यातायात, डाक, और तारा व्यवस्था को ज्यो का त्यों बनाये रखने का वचन दिया। इसके पूर्व भारत वर्ष से वार्तालाप हो सकें। पाकिस्तान काश्मीर पर शक्ति के बल पर सम्मिलित होने के दबाव डालने लगा। कबायलियों की बहुत बड़ी जनसंख्या को काश्मीर में धुसपैठ के लिए प्रोत्साहन करने लगे। पाकिस्तान ने अन्न, पेट्रोल व अन्य आवश्यक वस्तुओं का काश्मीर भेजा जाना बन्द कर दिया तथा कश्मीर जाने का स्थल मार्ग भी पाकिस्तान होकर ही था। बड़ी संख्या में आधुनिक शास्त्रों से लैस कबायली काश्मीर में हस्तक्षेप कर रहे थे। श्रीनगर में महोरा बिजली घर जला दिया गया। समस्त राज्य पर अधिकार करने के उद्श्ये से आक्रमणकारी श्रीनगर पर कब्जा करना चाहते थे।

24 अक्टूबर 1947 को कश्मीर रियासत ने प्रथम बार भारत सरकार से सहायता की माँग की। उसी दिन भारत सरकार को ज्ञात हुआ कि मुजफ्फराबाद छिन गया है। 25 अक्टूबर को प्रातः ही लार्डमाउण्टबैटन की अध्यक्षता में सुरक्षा समिति की बैठक हुई तथा वास्तविक जानकारी हेतु वी0पी0 मेमन को श्रीनगर भेजा गया। 26 अक्टूबर को महाराजा हरीसिंह लार्ड

माउण्टबैटन को एक पत्र भेजा जिसमें काश्मीर की विस्फोटक स्थिति की चर्चा करते हुए कहा- ''राज्य की वर्तमान स्थति तथा संकट को देखते हुए मेरे सामने इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है कि मैं भारतीय अधिनियम से सहायता माँगू। यह स्वाभाविक है कि जबतक कश्मीर भारतीय अधिराज्य में शामिल नहीं हो जाता भारत सरकार मेरी सहायता नहीं करेगी। अतएव मैने शामिल होने का निर्णय कर लिया है और मैं प्रवेश पत्र को आपकी सरकार की स्वीकृति हेतु भेज रहा हूँ। पत्र के अन्त में महाराजा ने कहा कि ''यदि राज्य को बचाना है तो श्रीनगर में तत्काल सहायता पहुँच जानी चाहिये। श्री वी0पी0 मेमन स्थिति की गम्भीरता को भली-भाति जानते थे। मेमन ने लिखा है कि- पटेल हवाई अड्डों पर मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी दिन सायंकाल सुरक्षा समिति की बैठक हुई लम्बी वार्तालाप के पश्चात यह तय हुआ कि जम्मू कश्मीर के महाराजा की प्रार्थना को इस शर्त के साथ स्वीकार कर लिया जाये कि शक्ति और व्यवस्था स्थापित होने के बाद जम्मू कश्मीर में विलय पर जनमत संग्रह कराया जाये। 27 अक्टूबर को तत्कालिन सेनायें जहाजों के द्वारा कश्मीर भेज दी गयी। उस समय आक्रमणकारी श्रीनगर से मात्र 17 मील की दूरी पर थे। श्रीनगर पहुचते ही भारतीय सैनिकों ने श्रीनगर के आसपास से आक्रमणकारियों को खदेड़ दिया। 3 नवम्बर को सरदार पटेल तथा रक्षामंत्री बलदेव सिंह श्रीनगर गये। उन्होंने वहाँ राजनीतिक स्थिति की समीक्षा की तथा काश्मीर मंत्री और ब्रिगेडियर एल0पी0 सेन से सैनिक स्थिति के बारे में जानकारी ली। 8 नवम्बर को भारतीय सेनाओं ने वारामूला पर अधिकार कर लिया।

28 नवम्बर को सरदार पटेल स्वयं जम्मू गये। जनता को सात्वाना देते हुए उन्होंने कहा मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि हम काश्मीर को बचाने के लिये अपनी शक्ति भर सब कुछ करेंगे। जनता से निडर होकर स्थिति का सामाना करने की सलाह देते हुए सरदार ने कहा -''मृत्यु निश्चित है वह शीघ्र या विलम्ब से अवश्य आयेगी। परन्तु लगातार भय में रहना प्रति दिन मरने के समान है। अतः हमें निडर व्यक्ति के समान रहना है।

1 जनवरी 1948 को भारत सरकार ने कश्मीर का प्रश्न सयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किया। सरदार पटेल इससे सहमत न थे। उस काल के पत्र व्यवहार से स्पष्ट है कि सरदार पटेल जम्मू कश्मीर में संवैधानिक रूप से कार्य करने वाली सरकार के पक्ष में थे। परन्तु साथ ही वे शेख अब्दुल्ला का महाराजा के प्रति व्यवहार तथा नेहरू द्वारा शेख अब्दुल्ला को आवश्यकता से अधिक महत्व देने से सन्तुष्ट नहीं थे।

8 जून 1948 को नेहरू को एक पत्र में सरदार ने कहा ''हमें महाराजा तथा शेखअब्दुल्ला के बीच मतभेदों की खाई को पाटने का प्रयास करना चाहिये। हरि विष्णु कामथ के अनुसार- पटेल ने अत्यन्त दुख के साथ उनसे कहा कि ''यदि जवाहर लाल और गोपाला स्वामी आयंगर ने कश्मीर को अपना व्यक्तिगत विषय बनाकर मेरे गृह तथा रियासत विभाग से अलग न किया होता तो कश्मीर की समस्या उसी प्रकार हल होती है जैसे कि हैदराबाद की।

वास्तव में कश्मीर समस्या पर नेहरू तथा सरदार पटेल में मतभेद थे। सरदार के अनुसार ''कश्मीर समस्या रियासत विभाग का अंग थी। जबकि नेहरू के अनुसार उसमें अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न सम्मिलित थे। इसी पर दोनों में मतभेद थे। दिसम्बर 1947 के पश्यात् कश्मीर मामले पर सरदार का हस्तक्षेप बहुत कम हो गया।

प्रजातंत्रीयकरण

देशी रियासतों के शासन का प्रजातंत्रीकरण आय प्रमुख समस्या थी। जिसे भारत सरकार को सुलझाना था। स्वतंत्र भारतीय प्रान्तों में प्रतिनिध्यिात्मक और प्रजान्तांत्रिक संस्थाओं की स्थापना की गयी थी। दूसरी ओर देशी रियासतों में अप्रजातांत्रिक शासन था, एकही देश में प्रजातांत्रिक और अप्रजातांत्रिक शासनों को साथ-साथ रहना सम्भव नहीं था। संविधान लागू होने के 10 वर्षों तक इस राज्यों में कुशल प्रशासन तथा समुचित राजनीतिक विकास के लिए भारत सरकार को उत्तददायी बनाया गया। पिछड़े देशी राज्यों को भी इसमें सम्मिलित किया गया। दिल्ली और हिमाचल प्रदेश में पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना की गयी।

नव भारत निर्माण में देशी रियायतों का यह सफल विलयन अपनी अहिंसात्मक एवं शान्तिपूर्ण पद्धतियों के लिए विश्व के इतिहास में एक अभूतपूर्व क्रान्ति रहा है। मार्च 1948 में ''मत्स्य संध'' का उद्घाटन करते समय एन0वी0 गाडगिल ने कहा कि- ''यदि महात्मा गाँधी हमारी स्वतंत्रता के निर्माता है तो बल्लभ भाई पटेल भारतीय संघ के विश्वकर्मा हैं।'' उन्होंने भारत

की भलाई के लिए वहीं किया जो लार्ड लडहौजी ने इसकी बुराई के लिए किया था। मोरारजी देसाई ने अपने लेख में पटेल तथा विस्मार्क की तुलना करते हुए कहा कि ''विस्मार्क ने जर्मनी का एकीकरण किया परन्तु उन्होंने अधिक समय लिया और वह भी एक छोटे देश में जहाँ कुछ ही राज्य थे तथा एक ही धर्म के लोग थे, परन्तु पटेल ने यह कार्य एक विशाल देश में जहाँ विभिन्न धर्म तथा भाषा के लोग थे और जहाँ देश के प्रति बड़ा खण्ड शताब्दियों के पश्चात् एक शासन व्यवस्था में लाने में सरदार की भूमिका सराहनीय थी। परन्तु यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि इसी कार्य के कारण सरदार आज इतिहास में अमर बन गये हैं। इतना ही नहीं वरन वह आधुनिक भारत के एक महान निर्माता के रूप में भावी इतिहास में याद किये जायेंगे।

सन्दर्भित ग्रन्थ

वी0पी0 मेनन -दि स्टोरी ऑफ इंटीग्रेशन ऑ दि इण्डियन स्ट्रेटस (ओरियन्ट लॉगमैन कलकत्ता 1956)
स्मरण पत्र 22 मई 1946 को प्रकाशित के0एम0 मुशी इण्डियन कॉस्टीटयूशनल डाकूमेंटस वाल्यूम 2 (बम्बई 1967)
नरसिंह, डॉ0 परीख -सरदार पटेल के भाषण (1918 से 1947) तक
फिलिय जिगलर माउण्टबैटन दि आफिशियल बायोग्राफी (लन्दन 1985)
जी0 एम0 नन्दूकर -(सम्पादित) सरदार पटेल इन दि टियून विद दि मिलयन्स, खण्ड-1।
मोरारजी देसाई - सरदार बल्लभभाई पटेल एज आई0 न्यूहिम''

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,78-82
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 11 अक्टूबर 2016

भारतीय समाज में कन्याभ्रूण हत्या की समस्या : एक प्रमुख चुनौती के रूप में

नीरज यादव*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारतीय समाज में कन्याभ्रूण हत्या की समस्या : एक प्रमुख चुनौती के रूप में* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *नीरज यादव* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

पिछले 20 वर्षों से लगातार 1990 के दशक से घटता हुआ लिंगानुपात समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति को दर्शाता है। 2011 के आँकड़ों के अनुसार भारत का लिंगानुपात प्रति हजार पुरूषों पर महिलाओं की संख्या 940 रहा। भारत के विभिन्न राज्यों जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड राज्यों में शिशु लिंगानुपात राष्ट्रीय औसत से नीचे रहा। हरियाणा राज्य के महेन्द्रगढ़ व झज्जर जिलों में शिशु लिंगानुपात राष्ट्रीय औसत से भी नीचे जा रहा है। भारतीय जनगणना आँकड़ों से पता चलता है कि कम लिंगानुपात वाले राज्यों में साक्षरता दर में निरन्तर सुधार हो रहा है। साक्षरता और शिशु लिंगानुपात के बीच नकारात्मक सह-सम्बन्ध रहा। जहाँ महिलाओं को विभिन्न कानूनी अधिकार दिए जा रहे हैं तथा राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण कार्यों में भी पुरूषों से कंधें से कंधा मिलाकर देश की सुरक्षा प्रदान कर रही है वहीं दूसरी ओर पुरूष प्रधान समाज में कन्या भ्रूण हत्या जैसी सामाजिक बुराई का उद्‌भव तीव्रता से हो रहा है। जो कि संकीर्ण मानसिकता को दर्शाता है। वर्तमान में आधुनिक चिकित्सा तकनीकों (अल्ट्रासाउण्ड) के विकास से व परिवार नियोजन की बढ़ती हुई जागरूकता के फलस्वरूप कन्या भ्रूण हत्या के मामले तेजी से बढ़ रहे हैं। आज भी लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को अधिक महत्व दिया जाता है। धार्मिक दृष्टि से पुत्र को परिवार का मुख्य भाग माना जाता है। अपने अभिभावकों के सामाजिक उत्तरदायित्वों एवं रीति-रिवाजों को पूर्ण करता है। पिता का उत्तराधिकारी लड़के को माना जाता है। वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य कन्या भ्रूण हत्या के कारणों का पता लगाना उसे दूर करने के उपायों को सुझाना है तथा हरियाणा राज्य के शिशु लिंगानुपात तथा साक्षरता दर के बीच अंतर्संबंधों का अध्ययन है।

* [पी.एच.डी. -भूगोल] वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

परिचय

प्रत्येक देश में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अनेक सामाजिक समस्याएँ होती हैं। एक समाज की समस्याएँ दूसरे समाज की समस्याओं से प्रायः भिन्न रहती हैं। यद्यपि यह भी सम्भव है कि विभिन्न समाजों में कुछ समान सामाजिक समस्याएँ विद्यमान हो। किसी भी समाज में समुचित उन्नति तभी सम्भव है जब उस समाज के सदस्य अपने समाज की समस्याओं के प्रति जागरूक हों। जब समाज के सदस्य अपनी सामाजिक समस्याओं के प्रति सर्तक नहीं रहते तो स्वाभाविक है कि वह समाज नाना प्रकार की कु-प्रथाओं, अव्यवस्थाओं, सामाजिक विघटन आदि में फँसता चला जाता है।

ऐसी में एक समस्या कन्या भ्रूण हत्या है भारतीय समाज पुरूष प्रधान समाज है तथा यहाँ लड़की की तुलना में लड़के को अधिक महत्व दिया जाता है। धार्मिक दृष्टि से भी पुत्र प्राप्ति आवश्यक है क्योंकि वह श्राद्ध एवं तर्पण द्वारा मृत पिता एवं पूर्वजों को स्वर्ग पहुँचाता है। अधिकार की दृष्टि से भी पुत्र का होना आवश्यक माना जाता है किन्तु कई बार परिवार में लड़कियों की संख्या अधिक होने पर लड़कियों के पैदा होते ही मार दिया जाता है। कन्या भ्रूण हत्या जो नारी हत्या का ही एक रूप है। नारी हत्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कई रूपों में देखने को मिलती है। माता के गर्भ में ही नारी शिशु को मार देना या जन्म के बाद उसे मार देना, उसका उत्पीड़न करना या ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करना जिसमें नारी आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाए या जहर देकर मारना या गलाघोंट देना सभी नारी हत्या के प्रत्यक्ष रूप है। नारी हत्या का अप्रत्यक्ष रूप वह है जिसमें नारी शिशु के पालन-पोषण एवं चिकित्सा की ओर उचित ध्यान नहीं देने से वे मौत की शिकार हो जाती है। वैज्ञानिक प्रगति से मानव ने हजारों सुख सुविधाएँ और साधन जुटाएं है आज हम माता की जाँच ''Amnicentesis'' कहा जाता है कि इनके द्वारा भ्रूण की जाँच कर यह पता लगा सकते हैं कि उत्पन्न होने वाला शिशु लड़का है या लड़की मानव ने इस वैज्ञानिक ज्ञान का दुरूपयोग किया है और यदि भ्रूण लड़की का हो तो उसका गर्भपात करवा देते है इसे ही कन्या भ्रूण हत्या के नाम से जाना जाता है। वर्तमान समाज में प्रचलित कन्या भ्रूण हत्या के प्रचलन के आर्थिक व सामाजिक कारण है।

यूनाइटेड नेशनल चिल्ड्रन फण्ड की हालिया रिर्पोट के अनुसार भारत में 50 मिलियन से अधिक लड़कियाँ गुमशुदा हैं। भारत में प्रतिवर्ष 12 मिलियन लड़कियाँ जन्म लेती हैं जिनमें से एक मिलियन से अधिक लड़कियाँ अपना पहला जन्मदिन भी नहीं देख पाती हैं। 85,000 लड़कियाँ अपने आयु के पाँच वर्ष भी पूरे नहीं कर पाती हैं। मात्र 9 मिलियन लड़कियाँ ही अपना 15वाँ जन्मदिन देख पाती है।

महिलाएँ मानव प्रजाति का उतना ही महत्वपूर्ण भाग है जितने की पुरूष। इसी कारण महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने के दृष्टिकोण से विभिन्न कानूनों के तहत अधिकार व विशिष्ट नौकरियों में आरक्षण दिया गया है।

कन्या भ्रूण हत्या की वर्तमान स्थिति को निम्न शोधों के द्वारा अधिक स्पष्ट किया जा सकता है :

1. साबू, एम. जार्ज (2002) ने देश में एक सर्वे कराया और पाया कि गिरते लैंगिक अनुपात में ''अल्ट्रासाउन्ड तकनीक'' की अहम भूमिका रही है जिसके कारण गर्भ में ही शिशु के लिंग की जाँच करके उसकी हत्या कर दी जाती है।
2. M. Kohlean (1999) & Sindu (1998) ने निष्कर्ष निकाला कि पौरूषत्व तथा महिलाओं के विरूद्ध पक्षपात ही भारतीय समाज में निचले लिंगानुपात का कारण है।
3. Arnold. F. etal (2002), Kishore (1993), Das gupta (1997) ने इंगित किया कि दक्षिण एशिया में बेटी को बेटियों की अपेक्षा अधिक महत्व देने का आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक कारण है।
4. अमर्त्यसेन (1990) ने निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि चीन और कुछ दक्षिण एशियन देश जो भारत की सीमा से जुड़े है महिला जनसंख्या में अनियमितता पाई जाती है। भारत तथा चीन में पितृ-सतात्मक व्यवस्था, सर्वत्र पुत्र जन्म को विशेष वरीयता और समाज में पुरूषों के द्वारा उच्च सामाजिक परिस्थिति को प्राप्त करना ये सभी कारण इसके लिए उतरदायी है।
5. Puri, Bhatia, Swami (2007) ने प्रस्तुत किया है कि दहेज प्रथा ''कन्या भ्रूण हत्या का एक प्रमुख कारण है। माता- पिता बेटी को पैदा कर उसके पालन-पोषण, शिक्षा, विवाह पर व्यर्थ खर्च नहीं करना चाहते। क्योंकि वे उसे पराया धन समझते हैं।

उद्देश्य

1. कन्या भ्रूण हत्या के कारणों तथा परिणामों को जानना।

2. कन्या भ्रूण हत्या जैसी सामाजिक बुराई को दूर करने के उपाय सुझाना।
3. हरियाणा राज्य के शिशु लिंगानुपात तथा साक्षरता दर के बीच अंतर्सम्बन्धों का अध्ययन करना।

अनुसंधान विधि एवं आँकड़ों का संग्रहण

अनुसंधान अध्ययन के आँकड़ों का संकलन भारतीय जनगणना विभाग द्वारा प्रकाशित प्राथमिक जनगणना सारांश द्वारा प्राप्त किए गए। इस अनुसंधान अध्ययन में हरियाणा राज्य के शिशु लिंगानुपात तथा साक्षरता के बीच सहसम्बन्धों को जानने के लिए स्पीयरमैंन रैंक अन्तराल विधि का उपयोग किया गया है।

$$\frac{1-6\sum D^2}{N(N^{2-1})}$$

कन्या भ्रूण हत्या के कारण

1 पुत्र जन्म को वरीयता; भारतीय समाज में बेटी की अपेक्षा बेटे का जन्म अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। बेटी का परिवार में एक जिम्मेदारी समझा जाता है जबकि बेटे को परिवार का गौरव माना जाता है। हिन्दू धर्म के अनुसार यह मान्यता है कि वृद्धावस्था में बेटा ही माता-पिता की सेवा करेगा तथा परिवार का अधिक खर्च वहन करेगा।

2 दहेज-प्रथा; कन्या भ्रूण हत्या का प्रमुख कारण दहेज-प्रथा है। दहेज की बढ़ती माँग मान्यता के कारण स्त्रियाँ तथा बच्चियों को परिवार में आर्थिक भार की तरह देखा जाता है। यदि माता-पिता अच्छा कमाते है और बेटी भी पढ़ी लिखी है तो उसके प्रति परिवार का आर्थिक दायित्व और अधिक मूल्य लगाया जाता है और माता-पिता अपनी बच्चियों की खुशी के लिए भारी-भरकम दहेज की माँग को स्वीकार भी कर लेते है, परन्तु वर्तमान समय में माता-पिता दहेज के बोझ से स्वयं को मुक्त करने के लिए अपनी कन्या का गर्भ में ही हत्या कर देते है और उनका मानना है कि ''ना बेटी जन्म लेगी और ना ही दहेज की चिन्ता होगी''

3 पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था के आधार; भारतीय समाज का आधार पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था के प्रभाव के कारण परिवार में बेटे को जन्म देने के लिए महिलाओं को घर में उन्हें मानसिक व शारीरिक शोषण का शिकार होना पड़ता है। उन्हें परिवार में अन्य लोगों द्वारा अपेक्षित दृष्टि से देखा जाता है। इसलिए पति तथा सास ससुर के दबाव में भी कन्या भ्रूण हत्या की जाती है।

4 पुत्र परिवार में उच्च परिस्थिति के सूचक; परिवार में पति तथा सास-ससुर बेटे के जन्म पर शुभ-कार्यक्रम आयोजित करते हैं तथा अन्य रिश्तेदार भी शुभकामनाएँ महिलाओं को प्रदान करते हैं। परिवार बेटे में को जन्म देने से उनका सामाजिक स्तर ऊँचा उठ जाता है।

5 बेटी पराया धन; बेटियों को हिन्दू धर्म के अनुसार ''पराया धन'' माना जाता है। कुछ लोगों की मान्यता है जब लड़की पर उनका अधिकार नहीं है तो उसे जन्म देकर उसका बोझ क्यों वहन किया जाए।

6 बढ़ते अपराध; समाज में दिन-प्रतिदिन बढ़ते अपराध भी कन्या भ्रूण हत्या के सम्बन्ध में अहम भूमिका निभाते हैं। आज हमारे चारों ओर छेड़छाड़, बलात्कार, घरेलू हिंसा, दहेज हत्या और अन्य महिला सम्बन्धी अपराध अधिक संख्या में देखने को मिलते हैं जिससे माता-पिता अपनी बेटी को सुरक्षित वातावरण उपलब्ध कराने में स्वयं को सक्षम नहीं समझते। इस कारण माता-पिता के मस्तिष्क में कन्या के जन्म के सम्बन्ध में नकारात्मक भूमिका घर कर जाती है।

7 तकनीकी; अल्ट्रासाउण्ड तकनीक जो विज्ञान की अमूल्य खोज है। कन्या भ्रूण हत्या के लिए अधिक उत्तरदायी है। शहर तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्र में लोगों के लिए अल्ट्रासाउण्ड तकनीक तक पहुँच सरल हो गयी है और इन तकनीक के प्रयोग करने पर अदा की जाने वाली राशि को चुकाने में भी तो कोई हिचक महसूस नहीं करते। नई तकनीक तक सरल पहुँच माता-पिता को नये भ्रूण के सम्बन्ध में जानने को प्रेरित करती है कि वह भ्रूण लड़की है या लड़का। उसके बाद ही माता-पिता उसके जन्म के सम्बन्ध में निर्णय लेते हैं।

हरियाणा राज्य में शिशु लिंगानुपात तथा साक्षरता दर के बीच अन्तर्सम्बन्ध

2011 की जनगणना आँकड़ों के अनुसार हरियाणा राज्य की कुल साक्षरता दर 75.61 प्रतिशत शिशु जिसमें पुरूष साक्षरता दर 84.1 प्रतिशत तथा स्त्री साक्षरता दर 65.9 प्रतिशत शिशु लिंगानुपात 834 रहा।

स्पीयरमैन की कोटि अन्तर रीति द्वारा हरियाणा राज्य में शिशु लिंगानुपात तथा साक्षरता दर के बीच अन्तर्सम्बन्ध को समझा जा सकता है।

	जिला	साक्षरता दर (X)	शिशु लिंगानुपात(Y)	कोटि(X)	कोटि(Y)	कोटि अन्तर(D)	कोटि अन्तर(D^2)
1.	पंचकूला	81.9	863	20	19	1	1
2.	अंबाला	81.7	810	18.5	5	13.5	182.5
3.	यमुनानगर	78.0	826	13	9	4	16
4.	कुरूक्षेत्र	76.3	818	11	6	5	25
5.	कैथल	69.2	828	4	10	-6	-36
6.	करनाल	74.7	824	8	8	0	0
7.	पानीपत	75.9	837	10	13	-3	-9
8.	सोनीपत	79.1	798	14	7	10	100
9.	जीन्द	71.4	838	6	14	-8	-64
10.	फतेहाबाद	67.9	854	2	17	-15	-225
11.	सिरसा	68.8	862	3	18	-15	-225
12.	हिसार	72.9	851	7	16	-9	-81
13.	भिवानी	75.2	832	9	12	-3	-9
14.	रोहतक	80.2	820	15	7	8	64
15.	झज्जर	80.6	782	16	2	14	196
16.	महेन्द्रगढ़	77.7	775	12	1	11	121
17.	रेवाड़ी	81.0	787	17	3	14	196
18.	गुड़गाँव	84.7	830	21	11	10	100
19.	मेवात	54.1	906	1	21	-20	-400
20.	फरीदाबाद	81.7	843	18.5	15	3.5	12.25
21.	पल्लवल	69.3	866	5	20	-15	225
	N=10					$\sum d^2$ =2287.5	

$$1.\frac{6\sum D^2}{N(N^2-1)}$$

$$=\frac{6*2287.5}{21(21^2-1)}$$

$$=1-\frac{13725}{9261-21}$$

$$=1.\frac{13725}{9240}$$

=0.485

उपर्युक्त विधि द्वारा पता चलता है कि शिशु लिंगानुपात तथा साक्षरता दर के बीच नकारात्मक सहसम्बन्ध-0.485 रहा अर्थात् साक्षरता दर के बढ़ने पर लिंगानुपात निम्न रहा।

निष्कर्ष

भारत के हरियाणा राज्य में शिशु लिंगानुपात की विकट स्थिति जानने के बाद यह कहना उचित होगा कि अन्ततः कन्या भ्रूण हत्या के कारण सामाजिक व आर्थिक, धार्मिक क्षेत्र से जुड़ते प्रतीत होते हैं। मूल रूप से कन्या भ्रूण हत्या की जड़ें पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था तथा महिलाओं के प्रति विरोधी व्यवहार से जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं। एक ओर बेटे के जन्म को वरीयता देना, माता-पिता की मुक्ति के लिए बेटे का होना, बेटें को घर का कर्ताधर्ता मानना है। वहीं दूसरी ओर बेटी को आर्थिक वहन से जोड़ना, पराया धन मानना तथा उसकी जिम्मेदारी को बोझ के रूप में देखा जाता है। एक ओर वैश्विक समाज में जहाँ सर्वत्र समानता को बढ़ावा देने की पुरजोर कोशिश की जाती है। वहीं स्त्रियों को अर्थात् देश की आधी आबादी, जिसके बिना शेष आधी आबादी का कोई महत्व नहीं है। समय-समय पर स्त्री मानवाधिकारों की घोषणा की गई। परन्तु जिस समाज में स्त्रियों को जन्म लेने का अधिकार नहीं है उसके लिए अन्य स्त्री मानवाधिकार पूर्णतः अर्थहीन है। इसी कारण भारत एवं हरियाणा राज्य का स्त्री पुरूष अनुपात डगमगा रहा है। हरियाणा राज्य के शिशु लिंगानुपात और साक्षरता दर के बीच नकारात्मक सहसम्बन्ध -0.48 रहा अर्थात् साक्षरता दर के बढ़ने पर लिंगानुपात कम होता चला गया।

इस स्थिति को सुधारनें तथा महिलाओं को उसे जन्म का अधिकार दिलाने के प्रयास की आवश्यकता है। इसके सुझाव निम्न हैं :

1. देश की जनसंख्या के मस्तिष्क में जेन्डर विभेद की सोच को बदलने के लिए पूरे देश में अभियान चलाया जाना चाहिए।
2. कन्या भ्रूण हत्या को बढ़ाने में दहेज प्रथा का बहुत बड़ा हाथ है। इसलिए पूरे देश में दहेज प्रथा के खिलाफ आन्दोलन चलाया जाना चाहिए।
3. महिलाओं के विरूद्ध अपराधों को समाप्त करने के लिए आवश्यक है कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में सशक्त बनाया जाए।
4. सोनोग्राफी के विरूद्ध भारत सरकार द्वारा नियम लागू करके तथा टी.वी. में दिखाए जाने वाले विज्ञापनों कुछ सीमा तक समाज के प्रति भय व्याप्त किया जा सकता है। इस समस्या को दूर करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कदम महिला चिकित्सकों द्वारा उठाया जा सकता है। यदि महिला चिकित्सक इस अनैतिक कार्य का विरोध करें तो कितनी ही मासूम बालिकाओं को इस धरती पर आने दिया जा सकता है।
5. हमें कल्पना चावला, रानी लक्ष्मीबाई, किरण बेदी, और अन्य अन्य साहसी महिलाओं के उदाहरण को समाज के सामने प्रस्तुत करना चाहिए कि महिलाएँ किसी भी क्षेत्र में पुरूषों से कम नहीं है।
6. PNDT ACT को पूर्ण रूप से क्रियान्वित करने के लिए विभिन्न वर्ग, एन.जी. ओ., नागरिक समाज, महिलाओं, स्वास्थ्य समूह तथा मीडिया सभी को एक साथ मिलकर इस दिशा में कदम उठाने होंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मौर्य, शैलेन्द्र (2012), ''महिला मानवाधिकार ज्वलन्त मुद्दे एवं प्रमुख व्यवस्थाएँ, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर

श्रीवास्तव, सुधा रानी (1970), भारत में महिलाओं की वैधानिक स्थिति, कॉमनवैल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

नाटाणी, प्रकाश नारायण (2002), ''महिला जागृति और कानून'' आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर।

BHATIA,S PURI, SWAMI H.M.(2007), "Gender Perference and Awarnes regarding sex determination among married women in status of Chandigarh"

GEORGE, M SABU (2002), "Sex selection/Determination in India: contemporary Developments", Reproductive Health Matters, vol-10, No.19 (2002), PP-184-197.

ARNOLD FRED, KISHORE SUNITA & ROY, T.K. (2001) "Sex selective abortion in India"s Population and Development Review, Volume.28 (4), PP-759-785

SEN, A. (1990), "more than 100 million women are missing" New York Review of Books, 37(20)

वेबसाइट्स

www. Census.gov.in
en.wikipedia,org/wiki/female facticide
http://www.genderide.org/case infacticide.html
www.Times of India, Indian times.com/article show/607894.cms

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,83-85
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 12 अक्टूबर 2016

दिल्ली तथा बनारस घराने में समानता तथा विभिन्नता/ अन्तर

डॉ. निधि श्रीवास्तव*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *दिल्ली तथा बनारस घराने में समानता तथा विभिन्नता/ अन्तर* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *निधि श्रीवास्तव* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

दिल्ली तथा बनारस दोनों ही घरानों में तबले पर बजने वाले बोलो में पर्याप्त समानतायें है; जैसे दोनो ही घरानों में तबले पर बजने वाले दस बोल ही प्रचलित हैं। भले ही उन बोलो के सम्मिश्रण से कुछ क्लिष्ट बोल बनाये गये हो किन्तु मूलतः प्रारंभ मे एक से बोल ही दोनो घरानों में बजाये वसि खाये जातेहै। दोनो ही घरानों में प्रयुक्त प्रचलित तालों के बोल, मात्र विभाग, ताली, खाली एक जैसे ही है। उदाहरण के तौर पर त्रिताल, दादरा, कहरवा आदि किसी भी तालों को लें तो हम पाते हैं कि ताले दोनो ही घरानों में एक समानता होती हैं। दोनो घरानों में बजने वाली चीजें भी बहुत कुछ समान है- यथा कायदा, रेला, टुकड़ा, परन चक्कर दार आदि। दिल्ली घराने के बोल पूर्णतः तबले के उपयुक्त होते है एवं तबले पर ही बजाये जाते हैं, बनारस के बोल यद्यपि पखावज पर आधारित हैं तथापि तबले पर बड़ी कुशलता से बजाये जातेहै। दिल्ली में तबला सोलो वादन का नियम निर्धारित है इसी प्रकार बनारस के सोलो का क्रम भी निर्धारित होता है। दिल्ली के कलाकार से बनारस घराने के कलाकार सभी घराने की चीजें बजा रहे है। दोनों ही घरानों के कलाकार मेहनती, परिश्रमी तथा गुरू शिष्य परंम्परा के पोषक है। दोनो ही घरानो मे तबला संगति वादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती है। दिल्ली घराना एक मौलिक घराना है तथा विद्वान बनारस घराने को (पंजाब की शैली पर आधारित होने के नाते) पखावज शैली के आधार पर मौलिक मानते है जिसके फलस्वरूप एक पृथक शैली विकसित की गई है।

दोनों घरानों में समानता के बाद जो प्रमुख अन्तर मेरी नज़र मे आये वे इस प्रकार है- दिल्ली घराना एक प्राचीन घराना है कि जबकि बनारस घराना दिल्ली के बाद विकसित हुआ। दिल्ली घराने की नींव उस्ताद सिद्धार खाँ ने रखी जबकि बनारस घराने की नीव पं.रामसहाय मिश्र जी ने रखी। दिल्ली घराने के तबले के बोल बंद, कोमलकर्णप्रिय एवं मधुर होते हैं जबकि बनारस घराने के बोल पखावज की छाप के कारण खुले एवं बड़े-बडे तथा जोरदार होते है।दिल्ली बाज किनार अथवा चांटी, दो अंगुलियों का बाज है जबकि बनारस पूरे पंजे का बाज कहलाता है। दिल्ली घराने में तबला सोलो वादन में पैशकार से प्रारम्भ

* सहायक प्रोफेसर, एस. एस. खन्ना महिला महाविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : drnidhisrivastava1@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

करके कायदा, रेला, टुकडा, चक्करदार आदि बजाने की प्रथा है जबकि बनारस घराने में तबला सोलो वादन उठा नसे प्रारंभ करके कायदा, रेला, रौ, परन, चक्करदार, परनें तथा लग्गी, लडी बजाने की प्रथा है।

दिल्ली कोमलता प्रधान है बही बनारस बाज जोरदारी लिये हुये है। यद्यपि दिल्ली बाज मे पेशकारे को महत्ता दी जाती है व बनारस में पेशकारे को नही दी जाती, किन्तु ऐसा नही है कि बनारस में पेशकार बजता नही है। बनारस में भी पेशकार बजता है किन्तु बनारसी अंदाज में।

पेशकार—दिल्ली घराना

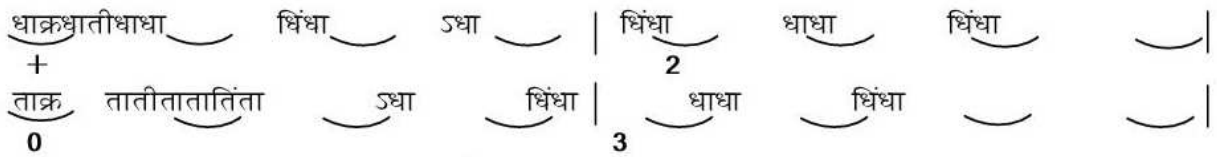

पेशकार—बनारस घराना

इस प्रकार दोनो की वजनदारी में अन्तर है। दिल्ली-बाज में कायदे, रेले इत्यादि बोल-समूह कोमलता से प्रस्तुत किए जाते हैं, परन्तु बनारस-बाज में इन्हीं बोल प्रकारों को जोरदारी के साथ प्रस्तुत किया जाता है। बड़ी-बड़ी गतें चक्कर दार गतें, चक्रा कार टुकड़े पर न इत्यादि का बाहुल्य रहता है, किन्तु दिल्ली-वादन-शैली में इन बोल प्रकारों की न्यूवता रहती है।

दिल्ली घराने की तबला संगति मंद तथा हल्के बोलों से युक्त मधुर बोलों वाली विलंबित लय ख्याल गायकी के अनुरूप होती है। बनारस घराने का तबला वादक संगति के प्रारम्भ में ही जोरदार पर न बजा कर संगति प्रारम्भ करता है, बीच-बीच में भी अपने जोशीले वादन से श्रोताओं को बरबस अपनी ओर खींच लेता है। बनारस की संगत में भी लग्गीलड़ी का प्रयोग होता है।

इस प्रकार से संगीत के इतिहास से लेकर तबला के दिल्ली तथा बनारस घरानों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुये उपसंहार के रूप में निष्कर्ष देने की विन्रम चेष्ठा की गई है। निष्कर्ष तक आने के लिये संगीत की प्रस्तावना से लेकर युगीन परिस्थितियों के अनुरूप तबला घराने का लेखा-जोखा करना अति आवश्यक प्रतीत हुआ और इन्हीं बिन्दुओं के तारतम्य में तबला विकास का क्रम दर्शाते हुये दिल्ली औरबनारस घरानों का तुलनात्मक अध्ययन संभव हो सका।

दिल्ली और बनारस घरानों के अनेक जिज्ञासु एवं कलाकारों से स्पष्ट बातचीत करते हुये यह बात मेरे सामने आयी कि दोनो ही घरानों में परस्पर स्नेह भरी सहमति है और उनका व्यापक सोच इस तथ्य को रेखांकित करता है कि दोनो घरानों के मिल-जुले स्वरूप के साथ ही अन्य घरानों के तबला वादन सामग्री को जोड़कर जो कुछ भी महफिल में प्रस्तुत किया जाता है वह अधिक आकर्षक और प्रभावी होता है। सभी घरानों के सारतत्वों के आधार पर की गई प्रस्तुत ज्यादा मनोहरी होने के साथ ही जनव्यापी हो जाती है। इस तरह शास्त्रीयता और लोक जीवन का सुन्दर सामंजस्य हो जाता है। सभी घरानों की वादन शैलियों को साथ लेकर चलने को यह नहीं सोच जाना चाहिए कि किसी विशेष घराने को इससे क्षति पहुंचेगी अथवा उसकी अहमियत कम हो जायेगी। सोचना यह होगा कितमान घरानों की शैलियां मिलकर एक ऐसा सुखद गुलदस्ता बनायेंगी जो प्रीतिकर, रूचिकर और हृदयग्राही और जनग्राही हो।सबका निचोड नये रूपरंग और संगीत की यश-सुगंधि को यत्र, तत्र सर्वत्र विखेरेगा। कला का यही सर्वमौलिक और युगीन स्वरूप माना जाता है।

ग्रंथसूची

पखावज और तबले के घराने एवं परम्परायें -डॉ0 आबनई.मिस्त्री
तबले का उद्‌गम विकास और वादन शैलियाँ -डॉ0 योगमाया शुक्ला
ताल प्रकाश -श्री भगवत शरण शर्मा
ताल दीपिका -श्री मधुकर गणेश गोडबोले
ताल परिचय, भाग-3 -श्री गिरिशचन्द्र श्रीवास्तव
अभिनदंन ग्रंथ पद्‌मविभूषण -पं0 किशन महाराज का अभिनंदन

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला, प्रधान सम्पादिका सार्क : अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com) www.anvikshikijournal.com

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक :शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश :कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि :इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रामानुसार :शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक :प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

पत्रिका :पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र :प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

इण्टरनेट :वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी :मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

विशेष :कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

प्रकाशन
अन्य एम.पी.ए.एस.वी.ओ. पत्रिकाएँ
आन्वीक्षिकी मासद्वयी शोधसमग्र पत्रिका
www.anvikshikijournal.com

अन्य सहसंयोजन
एशियन जर्नल ऑफ मार्डन एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस
अर्द्धवार्षिक पत्रिका
www.ajmams.com

www.anvikshikijournal.com

ISSN - 2347-8373

₹ 1500/-